सूरति मिश्र का अज्ञात काव्य

[रीतिकालीन कवि एव आचार्य सूरति मिश्र के
१० अज्ञात काव्यो का प्रथम वार प्रकाशन]

समीक्षक एवं सम्पादक
डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर

रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
चैनसुखदास मार्ग, जयपुर–३

● सूरति मिश्र का अज्ञात काव्य
(सूरति मिश्र ग्रन्थावली-द्वितीय भाग)

● सर्वाधिकार : डॉ० रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

● प्रकाशक : रोशनलाल जैन एण्ड सन्स
चैनसुख दास मार्ग, जयपुर–३

● मूल्य : २५ ०० रुपये

● प्रथम संस्करण : अक्टूबर १९७३ ई०

● मुद्रक : स्वदेश प्रिन्टर्स
तेलीपाडा, चौडा रास्ता, जयपुर–३
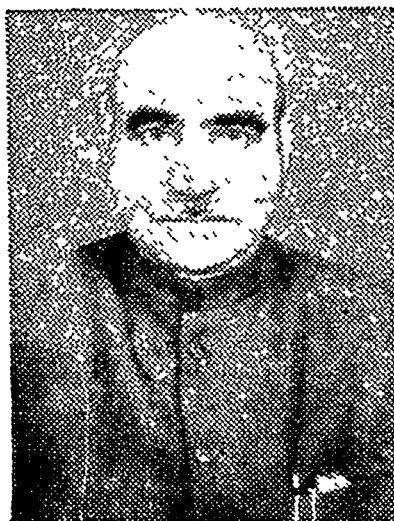
रीतिकालीन हिन्दी-साहित्य के सुधी अन्वेषक

आदरणीय डा० भगीरथ मिश्र

के कर कमलों में

सादर समर्पित

सूरति मिश्र
का
अज्ञात काव्य

प्राक्कथन

मैने सन् १९६७ ई. में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा स्वीकृत आर्थिक सहायता से सूरति मिश्र ग्रन्थावली का सम्पादन कार्य आरम्भ किया था। दो वर्ष पश्चात् उदयपुर विश्वविद्यालय से भी इस दिशा में प्रोत्साहन मिला। फलतः मैंने सूरति मिश्र के १७ ग्रन्थों का अन्वेषण कर पाठ-सम्पादन किया। इनमें से 'भक्तिविनोद' नामक काव्य 'सूरति मिश्र ग्रन्थावली—प्रथम भाग' के रूप मे सन् १९७१ मे प्रकाशित हो चुका है। प्रस्तुत ग्रन्थ सूरति मिश्र ग्रन्थावली का द्वितीय भाग है जो "सूरति मिश्र का अज्ञात काव्य" नाम से प्रकाशित हो रहा है।

इस भाग के प्रकाशन के लिए उदयपुर विश्वविद्यालय ने १५००) का अनुदान स्वीकृत किया है। एतदर्थ मै हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

ग्रन्थावली के प्रथम तथा द्वितीय भागों मे सूरति मिश्र की जो कृतियाँ प्रकाशित नही हो सकी हैं, तृतीय तथा चतुर्थ भागो के रूप मे शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित होंगी।

मेरा विश्वास है कि ग्रन्थावली के चारों भागो तथा विस्तृत अध्ययन के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् हिन्दी साहित्य के इतिहास मे सूरति मिश्र को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा।

—रामगोपाल शर्मा 'दिनेश'

विषय-क्रम

शोध-भूमिका

शोध-भूमिका

अ—सूरति मिश्र सम्बन्धी सामग्री और उसका परीक्षण

१—विषय-प्रवेश

सूरति मिश्र मध्य-कालीन उन साहित्यकारो मे से एक है, जिनको हिन्दी साहित्य के इतिहासो, खोज-विवरणो तथा शोध-प्रबन्धों एवं आलोचना-ग्रन्थो मे सम्मानपूर्वक स्मरण किया जाता रहा है, किन्तु जिनका एक भी ग्रन्थ अभी तक पाठको या विद्वानों को उपलब्ध नही है।[1] विभिन्न स्रोतो से उनके सम्बन्ध मे पाठको को जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह किस सीमा तक प्रामाणिक है, यह जानने की भी अभी तक चेष्टा नही की गई है। सग्रहालयों में उनके द्वारा रचित ग्रन्थो की कई पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित है, किन्तु किसी विद्वान् या शोधार्थी ने अपने विस्तृत अध्ययन मे उनका उपयोग नही किया है। अतः सूरति मिश्र के जीवन और साहित्य का अध्ययन आरम्भ करने से पूर्व उनके सम्वन्ध मे हिन्दी-जगत् के अद्यावधि ज्ञान और उसकी प्रामाणिकता का प्रश्न उत्पन्न होता है। सर्वप्रथम हम इसी प्रश्न पर संक्षेप में विचार करेंगे।

२—ज्ञान के स्रोत

सूरति मिश्र के सम्वन्ध मे हिन्दी-जगत् का अद्यावधि ज्ञान निम्नाकित तीन स्रोतो पर निर्भर है —

१—साहित्य के इतिहास

२—खोज-विवरण

३—शोध-प्रबन्ध एव आलोचनाएँ

यहाँ हम तीनों स्रोतो से उपलब्ध सूरति मिश्र-विषयक ज्ञान की सीमाओ को सक्षेप मे स्पष्ट करेंगे।

---

१. लेखक. प्रथम बार उनकी एक कृति '

सन् १९७१ में प्र

३—साहित्य के इतिहासों में सूरति मिश्र-सम्बन्धी उल्लेख

"हिन्दुई साहित्य का इतिहास"

हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास लिखने का श्रेय 'गार्सा-द-तासी' को दिया जाता है। इनका "इस्त्वार द लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदूस्तानी" नामक कविवृत्त प्रथम बार दो भागो मे सवत् १८९६ वि० (१८३९ ई०) एव १९०३ वि० (१८७४ ई०) मे प्रकाशित हुआ था और द्वितीय सस्करण १९७८ वि० मे छपा। सवत् २०१० वि० मे डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इसका "हिन्दुई साहित्य का इतिहास" नाम से हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया। सूरति मिश्र के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम यही ग्रन्थ "सूरत कवीश्वर" नाम से सामान्य जानकारी प्रस्तुत करता है, जो इस प्रकार है :—

"सूरत कवीश्वर ने मुहम्मदशाह के राजत्व काल मे और जयपुर नरेश जैसिंह × × की आज्ञा से "वैतालपचीसी" का व्रजभाषा मे अनुवाद किया।"[1]

इस परिचय से निम्नाकित बाते स्पस्ट होती है —

१—सूरति मिश्र मुहम्मदशाह के शासनकाल मे जीवित थे।

२—वे जयपुर नरेश जयसिंह के दरबार मे रहे थे।

३—उन्होने "वैतालपचीसी" का व्रजभाषा मे अनुवाद किया था।

तजकिरा-ई-शुअरा-ई-हिन्दी

मौलवी करीमुद्दीन ने सवत् १९०५ वि० मे तजकिरा-ई-शुअरा-ई-हिन्दी" ग्रन्थ प्रकाशित कराया, जिसके प्रथम खण्ड मे हिन्दी के ३९ प्राचीन कवियो का उल्लेख है। तासी के समान उसने भी इन कवियों का वर्णन ऐतिहासिक क्रम से नही किया है तथा जो सामग्री प्रस्तुत की है, वह भी तासी के ग्रन्थ से ली गई है। इस ग्रन्थ मे सूरति मिश्र का "सूरत" नाम से क्रम सख्या २७ पर उल्लेख है, जो तासी द्वारा प्रस्तुत किये गये परिचय का ही रूपान्तर है।

"शिवसिंह-सरोज"

१९३४ वि० मे ठा० शिवसिंह सेगर ने 'शिवसिंह—सरोज' नाम से एक कविवृत्त प्रस्तुत किया। इस ग्रन्थ मे सूरति मिश्र का निम्नाकित परिचय मिलता है —

---

१. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, लेखक—गार्सा द तासी, अनुवादक डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय-प्रकाशक: हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, प्र० स० १९५३ ई०, पृष्ठ ३१८

"कविप्रिया ग्रन्थ केशो कृत ने सब संस्कृत के पण्डितों को इस बात पर आरूढ कर दिया कि वे सब सस्कृत काव्य को छोड़ भाषा काव्य करने लगे। इसी कारण संवत् १७०० मे चिन्तामणि, मतिराम, भूषण, कालिदास कविंद, दूलह, देव, करन × × सूरति मिश्र, देवीदास, मुबारक, रसखान, रामकवि इत्यादि कवियों ने भाषा-काव्य के बडे-बड़े अद्भुत ग्रन्थ बनाए। सवत् १८०० मे जैसे अच्छे कवि हुए ऐसे किसी सैकरा के भीतर नही हुए थे।"[1]

इस परिचय के अतिरिक्त सरोजकार ने सूरति मिश्र की कविता के दो उदाहरण भी प्रस्तुत किये है, जो निम्नाकित है :—

"खरी होहु ग्वालिनि, कहा जु हमें खोटी देखी,
सुनो नेकु बैन सो तो और ठाँउ जाइये।
दीजै हमें दान, सो तो आज ना परब कछू,
गोरस दै, सो रस हमारे कहाँ पाइये॥
मही हमें दीजै, सो तो दै है महीपति कोऊ,
दही दीजै, दही हो तो सीरो कछु खाइये॥
"सूरति" सुकवि ऐसे सुनि हरि रीझे लाल,
दीन्ही उर माल शोभा कहां लगि गाइये॥

अलंकार–माला

दोहा—

तड़ि घन वपु घन तड़ि वसन, भाल लाल पख मोर।
ब्रज जीवन सूरति सुभग, जय जय जुगल किशोर॥
सूरति मिश्र कनौजिया, नगर आगरे वास।
रच्यौ ग्रन्थ नवभूषननि, वलित विवेक विलास॥
सवत् सत्तरह सै बरस, ख्यासठि सावन मास।
सुरगुरु सुदि एकादसी, कीनौ ग्रन्थ प्रकास॥"[2]

शिवसिंह द्वारा प्रस्तुत विवरण से पता चलता है कि—

---

१. शिवसिंह–सरोज, ले० शिवसिंह, प्रथम सस्करण, सवत् १९३४ वि० पृ० २८९

२. शिवसिंह–सरोज, पृ० २८९।

१— सूरति मिश्र की गणना एक ओर तो देव, मतिराम आदि रीतिकारो के साथ की जाती थी और दूसरी ओर उनका नाम भक्त-कवि रसखान के साथ भी लिया जाता था ।

२— शिवसिंह-सरोज की रचना के समय सूरति मिश्र की कविता के उदाहरण भी उपलब्ध थे ।

३— सूरति मिश्र ने "अलकारमाला" की रचना सवत् १७६६ मे की थी ।

४— अलकारमाला का वह छद, जिसमें सूरति मिश्र ने अपने कान्यकुब्ज होने एव आगरा निवास करने का उल्लेख किया है, सरोजकार को ज्ञात था ।

माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान

सवत् १९४५ वि० मे जार्ज ग्रियर्सन कृत "माडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर आफ हिन्दुस्तान" ग्रन्थ प्रकाशित हुआ, जिसका हिन्दी-अनुवाद "हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास" नाम से किशोरीलाल गुप्त ने प्रकाशित कराया है ।[1] इस ग्रन्थ मे संख्या ३२६ पर "सूरति मिसर" नाम से सूरतिमिश्र का परिचय इस प्रकार दिया गया है —

"आगरा के । १७२० मे उपस्थित । बिहारीलाल (सख्या १९६४) की सतसई की एक प्रख्यात टीका, सरस-रस (राग-कल्पद्रुम), नखसिख, रसिकप्रिया की टीका (देखिए सख्या १३४) और अलकारमाला नामक अलंकार-ग्रन्थ के रचयिता मुहम्मदशाह के शासन काल (१७१९-१७४८ ई०) मे बैतालपच्चीसी का ब्रजभाषा मे, जैसिह सवाई (स० ३२५, १६९९-१७४३ ई०) की आज्ञा से अनुवाद किया । यह ब्रजभाषानुवाद ही बैताल पचीसी के लल्लूजी लाल वाले सुप्रसिद्ध हिन्दुस्तानी रूपान्तर का मूलाधार है । पुनश्च' अलंकारमाला की तिथि स० १७६६ (१७०८ ई०) दी गई है ।[2]

पूर्वोक्त उद्धरण से निम्नाकित तथ्य प्राप्त होते है—

१— सूरति मिश्र आगरा के निवासी थे । यह तथ्य सरोजकार शिवसिंह भी अलकारमाला का छद लिखकर प्रकट कर चुके थे ।

---

१. हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास-पृ० १९८ ले० जार्ज ग्रियर्सन, अनु० किशोरी लाल गुप्त, प० स० १९५९ ई०, प्रकाशक-हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी ।

२ सूरति मिश्र का रचनाकाल १७६६-१८०० है ।"

२— सूरति मिश्र १७२० में वर्तमान् थे। किन्तु यह वर्ष संवत् न होकर ईस्वी सन प्रतीत होता है, क्योकि आगे चलकर ग्रियर्सन ने स्वय ही सूरति मिश्र का रचना–काल सवत् १७६६–१८०० वि० बतलाया है।

३— सूरति मिश्र ने सतसई की टीका, सरस-रस, नखसिख, रसिक प्रिया की टीका, अलकारमाला एवं बैतालपचीसी की टीका नामक ६ ग्रन्थो की रचना की। इनमे से "बैतालपचीसी की टीका" का उल्लेख तासी ने पहले ही अपने ग्रन्थ मे कर दिया था तथा अलकारमाला का उल्लेख शिवसिंह ने भी किया है। शेष चार नए ग्रन्थो का उल्लेख प्रथम बार ग्रियर्सन ने किया है।

४— बैतालपचीसी का अनुवाद जयसिंह की आज्ञा से करने की बात ग्रियर्सन ने तासी के आधार पर कही है अथवा, वह मान लेना चाहिए कि दोनो ने कही है।

५— ग्रियर्सन ने यह भी बताया है कि लल्लूलाल ने बैतालपचीसी का जो अनुवाद किया, उसका मूलाधार सूरति मिश्र कृत अनुवाद ही था।

६— अलकार माला का रचना-काल सं० १७६६ वि० (१७०८ ई०) है। यह समय शिवसिह द्वारा प्रस्तुत अलकारमाला के उद्धरण मे भी दिया गया है।

७— ग्रियर्सन ने सूरति मिश्र का रचना काल स० १७६६ से १८०० वि० तक बताया है, किन्तु उसका कोई प्रमाण नही दिया। लगता है, उन्होने "अलंकारमाला" को सूरति मिश्र का प्रथम ग्रन्थ माना है।

मिश्रबन्धु-विनोद—

ग्रियर्सन के पश्चात् हिन्दी-साहित्य का एक बडा इतिहास कवि–वृत्त के रूप मे ही हिन्दी मे प्रस्तुत करने का श्रेय मिश्रबन्धुओ को प्राप्त है। उन्होने "मिश्र-बन्धु-विनोद" नामक ग्रन्थ की तीन भागो मे रचना की। प्रथम भाग का प्रकाशन १९७० वि० मे हुआ। इससे पूर्व यू० पी० सरकार के कई खोज-विवरण सम्पादित हो चुके थे। मिश्रबन्धुओ ने उनसे लाभ उठाकर "विनोद" की सामग्री को पूर्ण बनाने की चेष्टा की। इसके प्रथम भाग मे सूरति मिश्र का केवल निम्नाकित उल्लेख मिलता है —

"आदिम देव-काल (१७५-१७०) के नामी कवियों मे छत्र, वैताल, लाल, प्रियादास, गुरुगोविन्दसिंह, चद, कवीन्द्र, श्रीधर, सूरति मिश्र और महाराजा अजीतसिंह है।"[१]

"सूरति मिश्र उत्तम कवि, उत्तम टीकाकार और उत्तम गद्य-लेखक हैं, आपने कई गभीर ग्रन्थ रचे है।"[२]

द्वितीय भाग में क्रम-सख्या ५५५ पर सूरति मिश्र का अधिक विस्तार से परिचय दिया गया है। उसमे खोज-विवरणो से ली गई सहायता का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है। विवरण इस प्रकार है:—

"ये महाशय कान्यकुब्ज ब्राह्मण मिश्र आगरा निवासी थे, जैसा कि ये स्वय लिखते है—"सूरति मिश्र कनौजिया, नगर आगरेवास।" उन्होंने अलकार माला (खोज १९०३) नामक अलकार-ग्रन्थ संवत् १९६६ मे लिखा और संवत् १७९४ मे अमरचद्रिका नामक बिहारी-सतसई की टीका बनाई। आपने कविप्रिया की टीका भी रची, जिसमे सवत् नहीं दिया है। परन्तु हमारे पास जो पुस्तक है, वह सवत् १८५६ की लिखी हुई है। इनका नखसिख हमने ठाकुर शिवसिंह जी काँथा-निवासी के पुस्तकालय मे देखा। उसमे भी सवत् नही दिया है, परन्तु वह प्रति १८५६ की लिखी है। इसके अतिरिक्त शिवसिंह-सरोज में इनके बनाए रसिकप्रिया (त्रै० मा० रि०) का तिलक और सरस-रस नामक दो ग्रन्थ और लिखे है। ये हमने नही देखे। याज्ञिक-त्रय ने इनके बनाए प्रबोधचन्द्रोदय नाटक, भक्ति-विनोद, रामचरित्र, कृष्ण चरित्र नामक और भी ग्रन्थ देखे है। अत अनुमान से कहा जा सकता है कि सूरति जी सवत् १७४० के लगभग उत्पन्न हुए होगे। खोज मे इनकी रस-गाहकचद्रिका तथा रसरत्नमाला (खोज १९०१) का भी पता चला है। सरस-रस का (१७९१) रचना-काल १७९४ लिखा है। च० त्रै० रि० मे जोरावर-प्रकाश तथा भक्तिविनोद नामक ग्रन्थ मिले हैं।

ये महाशय अच्छे कवि थे और भाषा इनकी मधुर थी। सतसई व कविप्रिया के तिलको से इनके पाण्डित्य का पूर्ण परिचय मिलता है। ऐसे

---

१. मिश्र बन्धु-विनोद, प्रथम भाग, ले० मिश्रबन्धु, प्रकाशक—गगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, प्रथम सस्करण, पृष्ठ ११६

२ मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, ले० मिश्रबन्धु, प्रकाशक—पुस्तक-माला कार्यालय, लखनऊ, प्रथम सस्करण, पृष्ठ १९।

उत्तम तिलक बहुत ही थोडे विद्वान् कर सके हैं। सतसई पर कम-से-कम पैतीस-चालीस तिलक हुए है, परन्तु सूरति जी के तिलक की समानता एक भी नही कर सकता। इन्होने अपने तिलक मे शकाएँ करके उनका समाधान बड़ी उत्तमता से कर दिया है। उनकी कवित्व-शक्ति तथा पाण्डित्य प्रशसनीय है।"

इसके पश्चात् मिश्रबन्धुओ ने सूरति मिश्र के चार ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार प्रस्तुत किया है.—

१—अलंकारमाला

अलंकार का ग्रन्थ, कुल ३१७ दोहों में है। इसमे अलकारों का वर्णन उत्तम रीति से किया गया है और प्राय. लक्षण तथा उदाहरण एक ही दोहे मे दे दिए गये है।

हिम सो हर के हास सो, जस मालोपम ठानि। (मालोपमा)
बिधु सो कंज सुकंज सो, मंजु बदन यहि बाम ॥ (रसनोपमा)
सु असंगति कारन अवर, कारज भिन्न सुथान।
चलि अहि श्रुति आनहि डसत, नसत और के प्रान ॥

(असंगति)

२—नखशिख

इसमे राधा–कृष्ण का अच्छा नख–शिख ४१ छंदो में कहा गया है।

त्रिभुवनपति के हरत दुख देखत ही,
सहज सुवास ऊँचे बास सोमरस है।
नेह जुत सरसे यहाई सुख सरसे वे,
तीनिहू बरन को प्रगट सुदरस है।
सब दिन एक सो महातम है सूरति यों,
नागर सकल सुखसागर परस है।
एरी मृगनैनी पिकबैनी सुख दैनी अति,
तेरी यह वैनी तिरबैनी ते सरस है॥ १ ॥
तेरे ए कपोल बाल अति ही रसाल मन,
जिनकी सदाई उपमा विचारियत है।
कोऊ न[illegible]न जाहि कीजै उपमान अरु,
[illegible]पुरे मधूकनि की देह जा[illegible]

नेकु दरपन समता की चाह करी कहूँ,
भए अपराधी ऐसे चित्त धारियत है।
सूरति सु याही ते जगत बीच आजु हू लो
उनके वदन पर छार डारियत है॥ २ ॥

३—अमरचन्द्रिका

यह सतसई के दोहो की टीका है। इसे उन महाशय ने स० १७९४ मे बनाई। यह महाराजा अमरसिंह जी जोधपुर के नाम से बनाई गई। इसके समान कोई भी टीका सतसई की अब तक नही बनी। इसमे बहुत से अर्थ कहे गये है और अलकार लक्षणा, व्यजना इत्यादि भी खूब साफ करके दिखलाई गई है। इस पर प्रसन्न होकर महाराज ने उनकी बडी खातिर की और कवि-कुलपति की पदवी दी। वास्तव मे यह ग्रन्थ ऐसा ही प्रशसनीय बना भी है।

४-कविप्रिया का तिलक

इसे भी इन महाशय ने बनाया, परन्तु इसमे सवत इत्यादि नही दिए गए है। यह भी तिलक उत्कृष्ट बना है। इसमे कुल छदो का तिलक किया गया है। परन्तु जो-जो स्थल कठिन और विवादपूर्ण है, उन पर शका रहित टीका की गई है, जो सर्वतोभावेन प्रशसनीय है। इससे केशवदास का क्लिष्टकाव्य पाठक सहज मे अच्छी तरह समझ सकते है।

आगे मिश्रबन्धुओ ने लिखा है कि—

"इन ग्रन्थो के अतिरिक्त इन्होने बैतालपचविंशति का सस्कृत से गद्य ब्रजभाषा मे अनुवाद किया। यह उलथा महाराज जैसिंह सवाई की आज्ञा से किया गया था।

खोज रि० त्रै० मे उनके बनाए हुए काव्य-सिद्धान्त, रस-रत्नाकर-माला और रसिकप्रिया की टीका रस-गाहकचन्द्रिका नामक ग्रन्थ लिखे है।

उदाहरण—

"कमल नयन कमल से है नैन जिनके कमलद बरन कमलद कहिए। मेघ को वरण है श्याम स्वरूप है, कमल नाभि श्री कृष्ण को नाम ही है, कमल जिनकी नाभि ते उपज्यो है। कमलाय कमला लक्ष्मी ताके पति है, तिनके चरण कमल समेत गुन को जाप क्यो मेरे मन मे रहो।"

ग्रन्थो की चर्चा करने के पश्चात मिश्रबन्धुओ ने निम्नाकित निष्कर्ष दिया है —

"इन पद्य कविताओं, टीकाओं और गद्य-काव्य का विचार करने से सूरतिजी एक उत्कृष्ट कवि ठहरते हैं। हम इनको पद्माकर की श्रेणी मे रखते हैं। इनकी टीकाओ का पाण्डित्य बिना पूर्व ग्रन्थावलोकन किए विदित नही हो सकता, अतः हम पाठकों से उनके देखने का अनुरोध करते हैं।"

मिश्रबन्धुओ द्वारा प्रस्तुत किए गए पूर्वोक्त समस्त विवरण को देखने से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने सूरति मिश्र के किसी भी ग्रन्थ का स्वयं अध्ययन नही किया था। उनकी समस्त जानकारी शिवसिह-सरोज, याज्ञिक-बन्धुओ से प्राप्त सूचनाओं तथा खोज-विवरणों पर आधारित हैं। हमे इनके विवरण से निम्नाकित तथ्य प्राप्त होते है:—

१— सूरतिमिश्र का प्रसिद्ध कवियो मे स्थान है। वे उत्तम कोटि के कवि, टीकाकार एव गद्य-लेखक थे।

२— सूरतिमिश्र के कान्यकुब्ज ब्राह्मण होने तथा आगरा मे निवास करने का आधार मिश्रबन्धुओ के अनुसार भी, अलकारमाला का वही दोहा है, जो सरोजकार ने उद्धृत किया है।

३— मिश्रबन्धुओ ने सूरतिमिश्र द्वारा रचित निम्नाकित १४ ग्रन्थो की सूची प्रस्तुत की है—

ग्रन्थ	रचनाकाल
१—अलकारमाला	सं० १७६६ वि०
२—अमरचन्द्रिका (टीका)	स० १७९४ वि०
३—कविप्रिया की टीका	—
४—नखसिख	—
५—रसिकप्रिया का तिलक	—
६—सरस-रस	सं० १७९४ वि०
७—प्रबोध-चन्द्रोदय	—
८—भक्तिविनोद	—
९—रामचरित	—
१०—कृष्णचरित	—
११—रसगाहकचन्द्रिका	—
१२—रसरत्नमाला	—
१३—काव्यसिद्धान्त	—
१४—जोरावरप्रकाश	—

इस प्रकार मिश्रवन्धुओ ने सूरतिमिश्र की ग्रन्थ-सख्या की जानकारी मे पर्याप्त वृद्धि कर दी है, परन्तु इस बात का पता नही लगाया कि उनमे से कौन से ग्रन्थ वास्तव मे सूरतिमिश्र की रचनाएँ है तथा वे कितने प्रामाणिक है ?

४— मिश्रवन्धुओ ने सूरतिमिश्र के जन्म-सवत् का भी अनुमान लगाया है और एतदर्थ १७४० वि० निर्धारित किया है।

५— उन्होने १७५१ वि० से १७७० वि० तक आदिम देव-काल और १७७१ वि० से १७६० वि० तक माध्यमिक देव-काल माना है तथा सूरतिमिश्र की गणना आदिम देव-काल के अन्तर्गत की है।

हिन्दी-साहित्य का इतिहास　आचार्य शुक्ल

'मिश्रवन्धु-विनोद' के पश्चात् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी-शब्द-सागर की भूमिका १६८६ वि० मे प्रकाशित कराई, जो बाद मे 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' नाम से स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप मे प्रकाशित हुई। शुक्लजी ने अपने इस इतिहास मे सूरतिमिश्र का उल्लेख पूर्व प्रकाशित ग्रन्थो तथा खोज-विवरणो के आधार पर ही प्रस्तुत किया है। उन्होने लिखा है—

"सूरतिमिश्र—ये आगरे के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, जैसा कि इन्होने स्वय लिखा है—'सूरतिमिश्र कनौजिया, नगर आगरे वास।' इन्होने अलकारमाला सवत् १७६६ मे लिखी। अत इनका कविता-काल विक्रम की अठारहवी शताब्दी का अन्तिम चरण माना जा सकता है।"

ये नसरुल्लाखाँ नामक सरदार के यहाँ तथा दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह के दरबार मे आया-जाया करते थे। इन्होने 'बिहारी-सतसई' कविप्रिया, और रसिकप्रिया' पर विस्तृत टीकाएँ रची हैं, जिनमे इनके साहित्य-ज्ञान और मार्मिकता का अच्छा परिचय मिलता है। टीकाएँ ब्रजभाषा गद्य मे है। इन टीकाओ के अतिरिक्त इन्होने वैताल-पचविशति का ब्रजभाषा गद्य मे अनुवाद किया है और निम्नलिखित ग्रन्थ रचे है—

१—अलंकारमाला　　२—रसरत्नमाला　　३—सरस-रस
४—रसगाहकचद्रिका　　५—नखशिख　　६—काव्यसिद्धान्त
७—रसरत्नाकर[1]

---

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, ले रामचन्द्र शुक्ल पृ. २६६–७०

उपर्युक्त विवरण के पश्चात् शुक्लजी ने 'अलकारमाला' तथा 'नखसिख' से दो उदाहरण भी प्रस्तुत किये है। ये दोनों उदाहरण मिश्रबन्धु-विनोद से लिए गए है। परिचय भी मिश्रबन्धुओ द्वारा दिए गए विवरण पर ही आधारित है। अत: जो त्रुटियाँ मिश्रबन्धुओं ने की है, वे शुक्लजी ने भी दुहराई है। उदाहरणार्थ, मिश्रबन्धुओं ने खोज-कर्ताओ की असावधानी से लिखी गई टिप्पणी को ज्यों-का-त्यो स्वीकार करते हुए राय शिवदासकृत 'सरस-रस' को सूरति मिश्र कृत बताया है, तो शुक्लजी ने भी उसी त्रुटि की पुनरावृत्ति कर दी है। अमरचन्द्रिका को ब्रजभाषा गद्य मे रचित बताना भी इसी प्रकार की एक अन्य त्रुटि है। ये त्रुटियाँ मूल ग्रन्थ न देख पाने के कारण हुई है। उन्होंने एक प्रसग मे लिखा है कि .—

"सूरति मिश्र ने (सवत् १७६७) सस्कृत से कथा लेकर 'बैतालपचीसी' लिखी, जिसको आगे चलकर लल्लूलाल ने खडीबोली हिन्दुस्तानी मे किया।"[१]

यह उल्लेख ब्रज भाषा गद्य के विकास-क्रम मे किया गया है। यहाँ शुक्लजी ने बिहारी-सतसई कविप्रिया एव रसिक प्रिया की टीकाओ की रचना ब्रजभाषा गद्य मे होने की बात फिर नही दुहराई है। बैतालपचीसी के अनुवाद का उल्लेख प्रथम बार 'तासी' ने किया था। उसके बाद सर जार्ज ग्रियर्सन और मिश्रबन्धुओ ने भी बैतालपचीसी की चर्चा की। खोज विवरण में भी बैतालपचीसी की कई प्रतियाँ सूरति मिश्र-कृत बताई गई है। शुक्लजी ने उक्त दोनो स्रोतो के आधार पर ही बैतालपचीसी का नामोल्लेख किया है। पता नही, वे मिश्रबन्धुओ द्वारा गिनाए गए सूरति मिश्र कृत अन्य ग्रन्थो के नाम गिनाना क्यो भूल गए है ?

कुछ अन्य इतिहास

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास के पश्चात् डा० श्यामसुन्दरदास, डॉ सूर्यकान्त शास्त्री, डॉ रसाल, हरिऔध, ब्रजरत्नदास, डॉ. रामरतन भटनागर आदि के इतिहास-ग्रन्थ प्रकाशित हुए, किन्तु इन इतिहासकारो मे मे कुछ ने तो सूरति मिश्र का नामोल्लेख तक नही किया और जिन्होने परिचय दिया है, उन्होने रामचन्द्र शुक्ल को अन्तिम प्रमाण मान लिया है। अत इन इतिहासो से न तो सूरति मिश्र-सम्बन्धी ज्ञान में कोई वृद्धि होती है, न पूर्ववर्ती ज्ञान का परिशोधन ही होता है।

हिन्दी साहित्य का अतीत

सवत् २०१७ वि० मे आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपने" हिन्दी

---

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, ले. रामचन्द्र शुक्ल पृ. ४०५

साहित्य का अतीत" नामक इतिहास का द्वितीय भाग प्रकाशित कराया। इसमे उन्होने अपने समय तक प्राप्त सूरति मिश्र-सम्बन्धी समस्त सूचनाओ को आलोचनात्मक ढंग से क्रम-बद्ध रूप मे प्रस्तुत किया है। खोज-विवरणो मे सूरति मिश्र के जिन ग्रन्थो के अलग-अलग परिचय दिए गए हैं, उन्हे उन्होंने व्यवस्थित करके एक स्थान पर सुलभ बना दिया है। उनके द्वारा प्रस्तुत की गई सूचनाएँ निम्नांकित है।

१— सूरति मिश्र आगरे के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे।

२— इनके पिता का नाम सिंहमणि था।

3— ये गणेशजी के शिष्य थे और वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए थे।

४— सबसे पहले सौ कवित्तो मे इन्होने श्री नाथविलास नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमे श्रीकृष्ण की लीलाओ का वर्णन है।

५— फिर भगवान् के चरित्र-वर्णन से मुडकर ये भक्तो की ओर आए। भक्ति-विनोद नामक पुस्तिका निर्मित की।

६— विनोद की रचना कर चुकने पर इन्होंने श्री वल्लभाचार्य के सेवकों की प्रशस्ति भी भक्तमाल के नाम से प्रस्तुत की।

७— कामधेनु नाम की एक ऐसी रचना प्रस्तुत की जिसमे भगवन्नाम ही रखे गए।

८— फिर नखसिख लिखा।

९— भक्ति में पुष्ट होकर ये लोकोपकार की ओर मुडे। सबसे पहले पिंगल-विषयक 'छन्दसार' नामक ग्रन्थ प्रस्तुत किया।

१०— बाद मे कवि-शिक्षा पर भी एक पोथी लिखी, जिसका नाम "कवि-सिद्धान्त" रखा।

११—फिर रस अलंकार, नायिका-भेद की ओर दृष्टि डाली और अलंकारो का संक्षिप्त विवेचन 'अलकारमाला' नामक पुस्तक मे किया।

१२—रसरत्न नाम के ग्रन्थ मे केवल १४ कवित्त और चौदह रत्न हैं।[१]

---

१ १. २. ३ ४. ५ ६. ७. ८ ९. १०. ११. १२. 'हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृष्ठ ४४५-४६।

१३—अब रस की बारी आई। इन्होंने शृंगार–सार नामक रस–ग्रन्थ भी प्रस्तुत किया।

१४—खोज मे रसरत्न के अतिरिक्त "रसरत्नमाला" (१६६–२४३–बी) और रसरत्नाकर (१६२६–४७४ एच) नाम के ग्रन्थो का उल्लेख मिलता है। पर ये सब रसरत्न ग्रन्थ ही है।

१५—याज्ञिक महोदय ने कृष्णचरित्र के अतिरिक्त रामचरित ग्रन्थ भी इनका लिखा बतलाया है। ये वल्लभ–कुल मे दीक्षित थे, अत हो सकता है कि "रामचरित" बलरामचरित हो।

१६—इन ग्रन्थो की रचना करने के अनन्तर ये व्याख्या और अनुवादों की ओर मुडे। सबसे पहले इन्होंने केशव के दो ग्रन्थो रसिक-प्रिया और कविप्रिया की टीका की। इनकी रसिकप्रिया की टीका का नाम "रसगाहक चन्द्रिका" है। यह टीका प्रश्नोत्तरी पद्धति पर लिखी गई है। सूरतिमिश्र की वही शैली जान पड़ती है, क्योकि कविप्रिया और बिहारी–सतसई की टीकाएँ भी इसी प्रणाली से प्रस्तुत की गई है।[1]

१७—कविप्रिया की टीका भी इसी समय के लगभग निर्मित हुई होगी, पर इसमे न आश्रयदाता का नाम है, न निर्माण–काल का पता चलता है। (खोज-विवरण १६१२–१८६)।

उक्त विवरण के अनुसार जहाँनाबाद के श्री नसरुल्लाखाँ के आश्रय मे इस टीका का निर्माण हुआ था। उसे बादशाह ने कदाचित उसके दानी होने के कारण 'निवाज मुहम्मदखाँ' की उपाधि दे रखी थी और वह स्वय भी कवि था। कविता मे (निश्चय ही हिन्दी की ब्रज की कविता मे) अपना नाम रसगाहक रखता था, इसी से इस टीका का नाम रसगाहकचन्द्रिका रखा गया।

१८—सूरतिमिश्र रसगाहक के विद्या-गुरु अर्थात काव्य–गुरु थे।

१९—सवत १७९४ में बिहारी–सतसैया की अमरचन्द्रिका टीका निर्मित हुई। इसके नामकरण का कारण यह है कि यह[2]

---

१ १३, १४, १५, १६ हिन्दी साहित्य का अतीत भाग २, पृष्ठ ४४६–४४७

२. १७, १८, हिन्दी साहित्य का अतीत भाग २, पृष्ठ सख्या ४४८ १९।

जोधपुर के दीवान अमरेश या अमर सिह के आश्रय में बनी थी।

२०—सूरतिमिश्र की इस टीका (अमरचन्द्रिका) से लल्लूलाल ने अपनी लालचन्द्रिका मे शास्त्र-विषयक सारी सामग्री उठाकर बेखटके रख दी है।[१]

२१—सवत १८०० मे सूरति मिश्र बीकानेर पहुँचे और वहा के तत्कालीन नरेश जोरावरसिह के कहने पर अपनी "रसिकप्रिया" की टीका (रसगाहकचन्द्रिका) उनके नाम पर जोरावर-प्रकाश नाम से आदि मे प्रशस्ति के कुछ छन्द बदल कर प्रस्तुत कर दी।

२२—जोरावर-प्रकाश अपेक्षाकृत गद्य का अधिक व्यवहार है।[२]

२३—इन टीकाओ के अतिरिक्त सूरति मिश्र ने सस्कृत के प्रबोध-चन्द्रोदय नाटक का भी पद्यानुवाद किया है।

२४—इन्होने शिवदास कवि कृत सस्कृत वैतालपंचविंशतिका का भी वैतालपचीसी के नाम से व्रज भाषा मे उल्था किया है। वस्तुतः लल्लूलाल ने सूरतिमिश्र के इसी ग्रन्थ का खडी बोली मे भाषान्तर कर दिया है। (खोज १९२६–२८) मे वैताल-पचीसी के चार अनुवाद सूरति मिश्र के नाम पर मिलते हैं, जो खडी बोली के है। × × ये सब वस्तुत. इनकी कृतियाँ नही हैं। इनके ग्रन्थ के रूपान्तर है।

२५—सूरति मिश्र वैष्णव थे, वल्लभ-कुल मे दीक्षित थे। इसलिए उन्होने अपने किसी ग्रन्थ में शिव की वन्दना नही की है।

२६—शुक्ल जी ने इनके परिचय मे लिखा है—
टीकाएँ वज भाषा मे हैं। इन टीकाओ के अतिरिक्त इन्होने "वैतालपचीसी" का व्रजभाषा गद्य मे अनुवाद किया हैं। ऊपर दिये गये विवेचन से पता चलेगा कि टीकाएँ गद्य मे नही पद्य मे हैं। उनमे वार्ता या गद्य का व्यवहार कदाचित है।[३]

---

१. २०, २१, २२ हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृष्ठ सख्या ४४९–५०

२ २३, २४ हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृष्ठ ४५१

३. २५, २६ हिन्दी साहित्य का अतीत, भाग २, पृष्ठ ४५३–५४

२७—हिन्दी मे रसिकप्रिया के सबसे प्राचीन टीकाकार सूरतिमिश्र है। इनकी टीका का नाम रसगाहकचन्द्रिका या जोरावरप्रकाश है। यह संवत १७९१ वि० में निर्मित हुई थी।[१]

२८—कविप्रिया के सबसे प्राचीन टीकाकार सूरति मिश्र है। यह टीका जहाँनाबाद के श्री नसरुल्लाह खाँ के आश्रय में निर्मित हुई थी। इनका काव्य-नाम रसगाहक था। इसका निर्माण-काल ज्ञात नहीं है, पर यह निश्चित है कि यह टीका भी रसिकप्रिया की टीका के साथ ही बनी होगी, अर्थात १७९१ के लगभग।

२९—सम्पूर्ण काव्यांगों पर दृष्टि डालने वाले आचार्यों मे केशव, चिन्तामणि, कुलपति, श्रीपति, सूरतिमिश्र, भिखारीदास आदि है।"[२]

ये सभी सूचनाएँ पूर्ववर्ती कविवृत्तो, इतिहासों एव खोज-विवरणो से एकत्र की गई है, अत. मूल ग्रन्थो के अवलोकन के अभाव के कारण इनकी अशुद्धियो का सशोधन नही हो सका है। इनमें से कुछ अशुद्धियाँ तो ऐसी है, जो उपर्युक्त सूचनाओ को पढ़ते समय ही स्पष्ट रूप में सामने आ जाती है। उदाहरणार्थ, पूर्वोक्त सूचना सख्या १६ में रसिकप्रिया की टीका का नाग रसगाहकचन्द्रिका बताया गया है और सूचना सख्या १७ में कविप्रिया की टीका का नाम भी रसगाहकचन्द्रिका उल्लिखित है। फिर सूचना संख्या २१ मे रसगाहकचन्द्रिका का ही कुछ परिवर्तित रूप जोरावर-प्रकाश बताया गया है। सूचना संख्या २५ मे उल्लेख है कि सूरति मिश्र ने अपने किसी भी ग्रन्थ मे वैष्णव होने के कारण शिव की वंदना नही की है, जबकि भक्तिविनोद मे शिव की वंदना मे लिखे गए कई छद मिलते है।

हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास

नागरी प्रचारिणी सभा का सबसे महत्वपूर्ण प्रकाशन 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास' है, जो कई भागो में संकल्पित है। इसके षष्ठ भाग मे सूरति मिश्र का परिचय देते समय अब तक के समस्त इतिहास एव खोज-विवरणो मे प्रस्तुत किए गए विवरणों को निराधार मानकर छोड़ दिया गया है। लेखक ने स्पष्ट [illegible] [illegible]ा है कि:—

१. २७ [illegible] [illegible]त्य का अतीत भाग २, पृष्ठ

२. २ [illegible] का अतीत, भाग २, पृष्ट

"आचार्य सूरति मिश्र के सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की सामग्री उपलब्ध नही है। इनके विषय मे केवल इतना ही पता चलता है कि ये आगरा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और इन्होने निम्नलिखित ग्रन्थ लिखे।"[१] इसके पश्चात् सूरति मिश्र के इन ११ ग्रन्थो के नाम गिनाए गए हैं—"अलकार-माला, रसमाला, सरसरस, रसगाहकचन्द्रिका, नखसिख, काव्यसिद्धान्त, रसरत्नाकर, अमरचन्द्रिका, कविप्रिया की टीका, रसिकप्रिया की टीका, वैतालपंचविंशतिका का ब्रजभाषानुवाद। और फिर कहा गया है कि "इनमे से सम्प्रति एक भी उपलब्ध नही है। केवल एक छंद आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास मे उद्धृत किया गया है, जिसके आधार पर किसी भी प्रकार का निर्णय देना हमारे लिए कठिन है।"[२]

तात्पर्य यह है कि वृहत् इतिहास तक सूरति मिश्र के सम्बन्ध मे विद्वानो का जो ज्ञान है, वह मात्र एक से दूसरे और फिर तीसरे विद्वान् तक चलने वाला ऐसा पिष्टपेषण है, जिसके पीछे मूल ग्रन्थो के आधार का पूर्णत अभाव है।

ब्रज-साहित्य का इतिहास

वृहत् इतिहास के पश्चात् एक बार फिर डॉ सत्येन्द्र द्वारा रचित "ब्रज साहित्य का इतिहास" ग्रन्थ मे सूरति मिश्र का विस्तृत उल्लेख मिलता है, परन्तु इस उल्लेख मे भी पूर्ववर्ती इतिहासो की सामग्री को ही क्रम-बद्ध रूप मे प्रस्तुत किया गया है। डॉ सत्येन्द्र ने भी सूरति मिश्र कृत उन्ही ग्रन्थो के नाम गिनाए है, जिनकी गणना पूर्ववर्ती इतिहासो मे की गई है।

४—खोज-विवरणो मे सूरति मिश्र सम्बन्धी सूचनाएँ

अंग्रेज शासन-काल मे सयुक्त प्रान्तीय सरकार तथा कुछ साहित्य-सेवी सस्थाओ ने प्राचीन अज्ञात ग्रन्थो की खोज का कार्य आरम्भ कराया था। सयुक्त प्रान्तीय सरकार ने आरम्भ मे कुछ खोज-विवरण प्रकाशित भी कराये थे। बाद मे यह कार्य नगरी प्रचारिणी सभा को सौपा गया था। सभा ने शासन के संरक्षण मे खोज का कार्य विधिवत् रूप से सचालित किया और विवरण तैयार कराए। स्वाधीनता के पश्चात् भी उत्तर प्रदेश शासन ने सभा

---

१ हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग ६, सम्पादन डॉ नगेन्द्र पृष्ठ—३४१

२ हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, भाग ६, सम्पादक डॉ नगेन्द्र, पृष्ठ—३४१

को इस कार्य के लिए पर्याप्त आर्थिक सहायता दी। फलतः अब तक सम्पन्न हुई खोज कार्य के विवरण भी त्रैवार्षिक विवरणो के रूप मे प्रकाशित हो चुके है।

मिश्रबन्धुओ के समय तक जो खोज-विवरण प्रकाशित तथा अप्रकाशित रूप मे उपलब्ध थे, उनमे उल्लिखित सूरति मिश्र-सम्बन्धी समस्त सामग्री का उपयोग 'मिश्रबन्धु-विनोद' मे कर लिया गया था। इसके पश्चात् शेष सभी विवरणो की सामग्री का उपयोग करते हुए विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपने इतिहास मे सूरति मिश्र का परिचय प्रस्तुत किया।

यहाँ हम खोज-विवरण सख्या १३, १५ तथा १८ मे उपलब्ध सूरति मिश्र-सम्बन्धी सामग्री का उल्लेख करते है, जिसने विशेष रूप से विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा प्रस्तुत परिचय को विस्तृत बनाया।

हस्तलिखित हिन्दी-ग्रन्थों का तेरहवाँ विवरण

इस विवरण मे संख्या ४४७ ए पर 'अमरचन्द्रिका' का उल्लेख मिलता है।[1] रचनाकाल १७९४ वि० (१७३७ ई०) दिया गया है। पाण्डुलिपि १९११ की प्रतिलिपि बताई गई है। पुस्तक का विशेष विवरण नही है। सख्या ४७४—बी पर बैतालपचीसी का उल्लेख है।[2] कहा गया है कि "यह गद्य मे है। भाषा शुद्ध खडीबोली है।"

इस परिचय से स्पष्ट है कि बैतालपचीसी सूरति मिश्र की रचना नही है, क्योकि उनकी जो रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं, उनमे यह सिद्ध नही होता कि वे खडी बोली का प्रयोग करते थे। सख्या ४७४ सी, डी तथा 'ई' पर भी सूरति मिश्र सूरति कवि कृत 'बैतालपचीसी' का उल्लेख है। सी एव डी का लिपिकाल १८९७ वि० (१८४०) ई० व १९०० वि० (१८४३ ई०) तथा ई का १९२४ वि० दिया गया है। इन प्रतिलिपियो के सम्बन्ध मे कोई विशेष विवरण उल्लिखित नही है। ४७४ एफ पर "जोरावरप्रकाश" का परिचय है। बताया गया है कि इसकी रचना पद्य मे हुई है तथा रचनाकाल १८०० वि० (१७४३ ई०) है, इसमे ५५ पत्र है तथा प्रति भी पूर्ण है। अन्य विवरण नही है। किन्तु जोरावरप्रकाश की जो प्रति मुझे मिली है, उसका आकार देखते हुए तो यही कहा जा सकता है कि या तो खोजकर्त्ता ने कोई अपूर्ण प्रति देखी है या उसने रसगाहक चन्द्रिका को ही 'जोरावरप्रकाश' समझ

---

१. त्रयोदश विवरण, पृष्ठ ६९८
२. त्रयो[illegible] वरण, पृष्ठ ६९९

लिया है। जैसा कि खोज-विवरण के आधार पर आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी किया है। इसी खोज-विवरण मे संख्या ४४७ जी पर 'रसगाहक-चन्द्रिका, टीका का उल्लेख है। इसमे भी ५२ पत्र है एव पद्य मे उसकी रचना हुई है। इसका रचनाकाल १६४८ वि० (१५९१ ई०) वताया गया है जो निराधार है। कुछ अन्य विवरण भी है, उनसे यह पुस्तके 'रसगाहकचन्द्रिका' की ही प्रतिलिपि प्रतीत होती हैं, किन्तु अपूर्ण है। खोजकर्त्ता के अनुसार इस प्रतिलिपि का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

श्री गणेशायनम ओम श्री व्रजसुन्दरी सिन्दूराम सुन्दर नद नद नाम नम' अथ सूरति मिश्र कृत रसगाहकचन्द्रिका टीका सयुक्त रसिकप्रिया प्रारम्यते।

दोहा--रसिक शिरोमणि रसिकप्रिय, रसलीला चितचोर।
रसा रास रस मय करी, जय जय जुगलकिशोर।१।

खोज—कर्त्ता ने अन्त मे लिखा है—

"विषय—प्रथम विलास—गणेशस्तुति, ग्रन्थ—रचना का क्रम, प्रकाश, संयोग वियोग लक्षण राधिका का प्रच्छन्न वियोग शृंगार। षष्ठ विलास—भाव के लक्षण—मुख नेत्र और वचन के द्वारा मन की वात जिस प्रकार प्रकट की जाय, उसको भाव कहते हैं। भावो के पच प्रकार—विभाव, अनुभाव, सात्विकी, स्थायी और सचारी--(यही से लेखक ने लिखना छोड़ दिया है।)"[1]

संख्या ४७४ एच पर "रसरत्नाकर" नामक ५ पत्रों वाली लघु प्रति का उल्लेख है जिसे पद्य मे रचित पूर्ण ग्रन्थ वताया गया है। इसका रचना—काल १७६८ वि० और लिपि—काल १९१६ वि० है। इसमे नायिका—भेद वर्णन है।[2] इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

श्री गणेशानमः। अथ रसरत्न लिख्यते।

दोहा—कमल नयन कमलादिवर, कमल नाभि कमलाय।
तिनके कमल चरण रहौ, मो मन गुन जुत जाय॥[3]

रसरत्न का आरम्भिक अंश भी यही है। इसी प्रकार आगे के उद्धरणो से मिलाने पर भी यह प्रति रसरत्न की ही प्रतिलिपि सिद्ध होती है।

---

१. त्रयोदश विवरण, पृष्ठ ७०३–४
२. त्रयोदश विवरण, पृष्ठ ७०४
३. त्रयोदश विवरण, पृष्ठ ७०४

संख्या ४७४ 'आई' पर सतसई–टीका का विवरण देते हुए रचना–काल १७९४ वि० और लिपिकाल १८५८ वि० बताया गया है। यह प्रति अमरचन्द्रिका टीका की ही प्रतिलिपि है, कोई पृथक ग्रन्थ नही है, जैसा कि विवरण मे उद्धृत आदि व अंत के अशो तथा विवरण से स्पष्ट है।[1]

पंद्रहवे त्रैवार्षिक विवरण मे क्रम सख्या २१३ पर 'शृंगार–सार' नामक ग्रन्थ का परिचय दिया गया है। विवरण के अनुसार इस ग्रन्थ मे २४ पत्र है। रचना पद्य मे हुई है। रचना–काल १७८५ वि० (सन १७२८ ई०) है। खोजकर्त्ता ने इस पाण्डुलिपि का विवरण बेलनगज (आगरा) के रामचन्द्र सैनी के यहा से प्राप्त किया है। उसने ग्रथ के आदि, मध्य और अ त के अ श देकर विपय का विवरण दिया है। आदि का अ श इस प्रकार है—

श्री गरोशायनमः। रिपुपत्नी नायका।
सुमरित ही हरि छिनतु ही, दीने वसन वढाइ।
सुनि प्रभाव रिपु की तरुनि, सबै गई मुरझाइ।
सपल पर नारि।
मन भावन आवन कह्यो, सावन लागत धाम।
विरमायो बालम सखी, काहू वैरिनि वाम।
उपनायका अनुनायका,
सम कुछ घटि उपनाइका, जे कनिष्टिका नाम।
लघुता युत अनुनायिका, जे सेवक जन वाम।

इस अंश मे कई अशुद्धियाँ है। यथा, 'रिपुपली' नायका 'सपल' आदि। खोजकर्त्ता से भी पाठ उतारते समय यह भूल हो सकती है और मुद्रण की अशुद्धि भी हो सकती है। आगे जो अश दिये गये है, उनमे भी ये अशुद्धियाँ वर्तमान हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि खोजकर्त्ता सामान्य शिक्षित होने के साथ-साथ पाठ–सम्बन्धी ज्ञान भी कम रखते थे। अत. उनके द्वारा दिये गये सभी विवरण विश्वसनीय नही है। इस विवरण मे दिया गया अत का अंश इस प्रकार है—

अन्त— दोहा

वरनी रस शृंगार की, सछेपहि कुछ रीति।
लखो चूक सो बनाइयो, कवि कोविद करि प्रीति॥

नगर आगरौ बसत सो, बांकी ब्रज की छाँह।
कालिन्दी कलमष हरनि, सदा बहति जा माँह॥

---

१ त्रयोदश विवरण, पृष्ठ ७०५

श्रुति पुरान कविता सरस, जप तप नृत्य सुगान ।
जहँ चरचा निशि दिन यहै, अरचा श्री भगवान ।।

भगवत पारायन भये, तहाँ सकल सुख धाम ।
विप्र कत वजु कुल कलस, मिश्र सिंघमनि नाम ।।

तिनके सुत सूरति सुकवि, कीने ग्रन्थ अनेक ।
परमारथ वर्णन विषै, परी अधकसी टेक ।।

माथे पर राजति सदा, श्रीमद् गुरू गनेस ।
भक्ति-काव्य की रति लही, लहि जिनके उपदेस ।।

इस असन्तम अश मे छद–सख्या नही है । आगे फिर एक अ श उद्धृत किया गया है और उसके साथ कहा गया है कि निम्न लिखित ग्रन्थ इन्होंने बनाये है—

प्रथम कियो सत कवित में, इक श्रीनाथविलास ।
इक ही तुक पर तीन सौ, प्रास नवीन प्रकास ।।

श्री भागवत पुरान के तहँ, श्रीकृष्ण चरित्र ।
वरने गोवर्द्धन–धरन, लीला लागि विचित्र ।।

भक्तविनोद सु दीनता, प्रभु सो सिक्षा चित ।
देव तीर्थ अरु पर्व के, समै समै सु कवित्त ।।

वहुरि भक्तमाला कही, भक्तिन के जस नाम ।
श्री वल्लभ आचार्य के, सेवक के गुन धाम ।।

कामधेनु इक कवित मे, कढ़त सत वरन छद ।
केवल प्रभु के नाम तहँ, धरे करन आनन्द ।।

इक नख-सिख माधुर्य है, परम मधुरता लीन ।
सुनत पढ़त जिहि होत है, पावन परम प्रवीन ।।

छदसार इक ग्रन्थ है, छद रीति सब आहि ।
उदाहरन ये प्रभु जसै, यौ पवित्र विधि ताहि ।।

कीनों कवि सिद्धान्त इक, कवित रीति को देखि ।
अलंकारमाला विपै, अलंकार सब लेखि ।।

इक रसरत्न कीनों वहुरि, चौदह कवित्त प्रमान ।
ग्यारह सौ बावन तहाँ, नाइकानि को ज्ञान ।।

इह इक रस-सिगार तहँ, उदाहरण रस-रीति ।
चारि ग्रन्थ ये लोकहित, रचे धारि हिय प्रीति ।।

कहा कहूं ये ग्रन्थ हू, प्रभु जस अंकित मानि ।
ज्यों व्यंजन वह लवन तनु, पाइ स्वादु मन मानि ।।

जा ग्रन्थ में कवित मे, आवै हरि को नाम ।
सौ बहु सुभ सूरत सुकवि, अति पवित्र सुख धाम ।।

संवत सत्रह सै तहाँ, वर्ष पचासी जानि ।
भयोग्रन्थ गुरु पुष्य मे, सित असाढ़ त्रय मानि ।।

बहु ग्रन्थनि मथिकै सुयस, रच्यौ सार सिंगार ।
सूरति सुकवि पढ़ै गुनै, पावै सब सुख सार ।। ९८ ।।

इति श्री सूरति मिश्र विरचिते सिगारसारे विप्रलम्भ वर्णन नाम सप्तमो विलास सपूर्ण सुभ ।[1]

आचार्य विश्वनाथ मिश्र ने पूर्वोक्त विवरणों को आधार बनाकर ही सूरति मिश्र का निम्नाकित परिचय दिया है—

"सूरति मिश्र आगरा के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । वह आगरा जो ब्रज की बाकी छाँह था, जिसकी गोद मे कल्मप हारिणी कालिदी प्रवाहित होती है, वह कालिदी तट जहाँ श्रुति–पुराण की व्याख्या का पठन-पाठन और जप, तप, नृत्य, गान आदि का समारोह हुआ करता था । इनके पिता का नाम सिंहमणि मिश्र था । ये गणेशजी के शिष्य थे और वल्लभाचार्य के सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए थे ।"[2]

---

१. पद्महचा विवरण, पृष्ठ ३३६
२. हिन्दी साहित्य का अतीत, द्वितीय भाग, प्रथम संस्करण, पृष्ठ ४४६ ।

उपर्युक्त परिचय पन्द्रहवे विवरण मे उद्धृत अन्त के अंश का गद्य रूपान्तर है। इसी प्रकार तृतीय अश का रूपान्तर इस प्रकार है—

"आरभ मे ये भक्तिकाल के कर्त्ता के रूप मे सामने आए। सबसे पहले सौ कवित्तो मे इन्होने "श्रीनाथविलास" नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमे श्रीकृष्ण की लीलाओ का वर्णन है। पर ये स्वभाव से चमत्कारवादी थे। अपने पाडित्य का प्रदर्शन करने के लिये इसमे चौथे चरण की तुक तो एक ही रखी, पर तीन चरणो का अन्त्यानुप्रास (तुकान्त) का काफिया ये नवीन रखते गए। इस प्रकार एक ही तुक के तीन सौ नवीन अन्त्यानुप्रासो मे यह ग्रन्थ लिखा गया, किसी तुक की पुनरुक्ति नही हुई। इन्होने श्रीकृष्णचरित्र भी श्रीमद्भागवत के आधार पर ही लिखा है, जिसमे विचित्र शैली से गोवर्द्धन-लीला का वर्णन किया गया है। फिर भगवान् के चरित्र-वर्णन से मुड़कर ये भक्तो की ओर आए। भक्त-विनोद नामक पुस्तिका को निर्मित किया, जिसमे भगवान् के प्रति दैन्य और उनसे भक्ति की प्राप्ति एव रक्षा के लिए प्रार्थना की गई है। तीर्थो और पर्वो के महात्म्य की थोड़ी रचना भी इसमे है। वस्तुत यह भक्तो की दिनचर्या का ग्रन्थ है। विनोद की रचना कर चुकने पर इन्होंने वल्लभाचार्य के सेवको की प्रशस्ति भी भक्तमाल के नाम से प्रस्तुत की, जिसमे भगवन्नाम ही रखे गए। कामधेनु की रचना मे जहाँ से पढिए भगवान् के नाम ही निकलते है। फिर 'नखशिख' लिखा। इस प्रकार नाम, रूप लीला और धाम आदि भक्ति के चारो स्तम्भो पर इनकी रचनाएँ प्रस्तुत हो गई। भक्ति मे पुष्ट होकर ये लोकोपकार की ओर मुडे। साहित्य का जैसा अभ्यास इन्होने कर लिया था, उसका लाभ दूसरे भी उठा सके और उसका मार्ग सरल हो, इसी विचार से ये रीति ग्रन्थो की रचना मे लगे। सबसे पहले पिंगल-विषयक "छदसार" नामक ग्रन्थ प्रस्तुत किया। इसमे जितने उदाहरण दिए गए है, उनमे प्रभुयश का ही कीर्तन है। बाद मे कवि-शिक्षा पर भी एक पोथी लिखी, जिसका नाम 'कवि सिद्धान्त' रखा। फिर रस, अलकार, नायिका-भेद की ओर दृष्टि डाली और अलकारो का सक्षिप्त विवेचन, अलकारमाला नामक पुस्तक मे किया। इसमे संस्कृत के 'चन्द्रालोक' और उसकी टीका कुवलयानन्द की पद्धति पर अलकार लक्षण और लक्षणा सहित एक ही दोहे मे समझाया गया है। 'रसरत्न' नाम के ग्रन्थ मे केवल चौदह कवित्त अथवा चौदह रत्न है। इनमे ११५२ नायिकाओ का वर्णन है। तात्पर्य यह है कि नायिकाओ के भेदोपभेद इन चौदह कवित्तो मे ही समझा दिए गए है। अब रस की बारी आई। इन्होने "शृंगार सार" नामक रस-ग्रन्थ भी प्रस्तुत किया। कहने की

आवश्यकता नही कि इन सब की रचना भी भक्ति-मिश्रित है। सूरति मिश्र की भावना थी कि ठीक तुलसी की भाँति बिना भगवद्–यश–वर्णन के काव्य से रस नही आ सकता, वैसे ही जैसे बिना नमक के भोजन मे स्वाद नही आया करता।"[१]

मिश्रजी द्वारा प्रस्तुत किया गया उपर्युक्त परिचय जहाँ एक ओर खोजकर्त्ता के अपरीक्षित विवरण पर आधारित है, वहाँ दूसरी ओर उसमे पूर्वोक्त खोजविवरण मे दिए गए नाम-क्रम को ही रचना-काल का क्रम भी मान लिया गया है, जबकि सभा के खोज-विवरणो मे ही कतिपय ग्रन्थो के रचना-काल भी दिए गए है। तात्पर्य यह है कि मिश्रजी ने खोज-विवरणों की सामग्री को ज्यो-का-त्यो प्रस्तुत करके सूरतिमिश्र का विस्तृत परिचय लिखा है। इनके इतिहास के समान ही अन्य इतिहासों की सामग्री भी खोज-विवरणो को अपना उपजीव्य बना कर चली है।

हस्तलिखित हिन्दी-ग्रन्थों का अठारहवाँ विवरण

सभा द्वारा प्रकाशित हस्तलिखित ग्रन्थों के अठारहवे विवरण के द्वितीय भाग मे सूरति मिश्र का संक्षिप्त परिचय मिलता है। उसमें पृष्ठ ११३४ पर जोधपुर के महाराज जसवन्तसिंह को उनका आश्रयदाता बताया गया है। पृष्ठ ८५४ पर संख्या २६३ के 'क' के अन्तर्गत सूरति मिश्र रचित 'प्रबोधचंद्रोदय' ग्रन्थ का उल्लेख है। इसमे प्रति पृष्ठ ८ पक्तियो वाले केवल ३६ पत्र है। ग्रन्थ ब्रजभाषा पद्य मे है तथा लिपिकाल १८८६ वि० बताया गया है। संख्या २६३ 'ख' पर 'छंदसार' का उल्लेख है। इसकी रचना पद्य मे हुई है।

अन्य खोज-विवरण

५—शोध-प्रबन्धो तथा आलोचना-ग्रन्थों में सूरति मिश्र-सम्बन्धी सामग्री

रीतिकाल के साहित्य पर शोध करने वाले कुछ विद्वानो ने भी सदर्भानुसार सूरति मिश्र के ग्रन्थो का उल्लेख किया है। डॉ० नगेन्द्र का शोध-ग्रन्थ "रीति-काव्य की भूमिका तथा देव और उनकी कविता" रीतिकाल-सम्बन्धी शोध-ग्रन्थो मे अधिक प्राचीन है। किन्तु इस ग्रन्थ मे सूरति मिश्र का उल्लेख करने का कोई प्रसग प्रस्तुत नही हुआ। अन्य शोध प्रबन्धो में डॉ० भागीरथ कृत 'हिन्दी-काव्य शास्त्र का इतिहास' का इस दृष्टि से प्रथम स्थान है। इस ग्रन्थ मे पृष्ठ ११२ से ११४ तक सूरति मिश्र का परिचय मिलता है। यह परिचय भी खोज-विवरण की सामग्री पर ही आधारित है। अत अधिकाशत ये ही बातें दुहराई गई है, जो हिन्दी साहित्य के इतिहासो मे मिलती हैं। परिचय का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"सूरति आगरे के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, जैसा इनके दोहे के एक चरण से पता चलता है। सूरति मिश्र कनौजिया, नगर आगरे वास। इन्होने कई ग्रन्थ काव्यशास्त्र पर लिखे। जैसे—अलकारमाला, रसरत्नमाला, रसगाहकचन्द्रिका, काव्य-सिद्धान्त, रसरत्नाकर, सरसरस आदि। इन्होने कविप्रिया और रसिकप्रिया की टीकाएँ भी ब्रज-भाषा गद्य मे लिखी है। इनका अलकारमाला ग्रन्थ स० १७६६ की रचना है। यह अलकारो पर लिखा हुआ भाषाभूषण के ढग का ग्रन्थ है, जिसका आधार 'चन्द्रालोक' जान पडता है।"[1]

इसके पश्चात् काव्य-सिद्धान्त' का परिचय दिया गया है, जो टीकमगढ मे देखी गई किसी पाण्डुलिपि के आधार पर है। इस परिचय मे 'काव्य-सिद्धान्त' की केवल विषय-वस्तु सक्षेप मे उल्लेख है।

सवत् १००९ वि० मे डॉ० मोतीलाल मेनारिया का शोध-प्रबन्ध 'राजस्थान का पिगल साहित्य' प्रकाशित हुआ। उस प्रबन्ध मे सूरति मिश्र का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार प्रस्तुत हुआ है—

"ये आगरा निवासी कनौजिया ब्राह्मण सिहमणि मिश्र के पुत्र थे। इनका जन्म स० १७४६ के लगभग हुआ। ये जहानाबाद के नसरुल्लाखां के आश्रित थे और जयपुर, बीकानेर आदि राज्यो के दरबारी कवि भी रहे थे। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित खोज की रिपोर्टो इत्यादि मे इनके रचे निम्न लिखित १९ ग्रन्थ बताए गए हैं—(१) अलकारमाला (२) बिहारी

१ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास—डॉ० भागीरथ मिश्र प्रथम सस्करण २००५ वि०, पृष्ठ ११२–१३

सतसई की अमरचन्द्रिका टीका (३) कविप्रिया की टीका (४) नखशिख (५) रसिकप्रिया का तिलक (६) रस-सरस (७) प्रबोधचन्द्रोदय नाटक (८) भक्ति-विनोद (९) रामचरित्र (१०) कृष्णचरित्र (११) रसग्राहक-चन्द्रिका (१२) रसरत्नाकर (१३) सरस-रस (१४) भक्तविनोद (१५) जोरावरप्रकाश (१६) बैतालपंचविंशति (१७) काव्यसिद्धान्त (१८) रसरत्नाकरमाला (१९) शृंगारसार।"[१]

आगे उन्होने लिखा है कि "इनके रासलीला अथवा दानलीला नामक एक और ग्रन्थ का पता हाल ही में लगा है, जिसकी एक हस्तलिखित प्रति अनूप सस्कृत पुस्तकालय बीकानेर में है।

इसके अतिरिक्त अपने 'शृंगारसार' ग्रन्थ मे सूरति मिश्र ने श्रीनाथ-विलास, भक्तमाल, कामधेनुकवित्त, कविसिद्धान्त और छंदसार—इन पाँच और ग्रन्थों का उल्लेख किया है, परन्तु उनमे से केवल छदसार अभी तक हस्तगत हुआ है, शेष का पता नही।"[२]

वस्तुतः डॉ० मेनारिया द्वारा प्रस्तुत विवरण जैसा कि आरम्भ में उन्होने स्वय भी स्वीकार किया है, सभा खोज-विवरणों से ही संकलित किया गया है। 'शृंगार सार' ग्रन्थ भी उन्होने देखा नही है। खोज-विवरण में उसके जो अश छपे है, उन्ही मे सूरति मिश्र के उन ग्रन्थो का उल्लेख है, जिनके न मिलने की सूचना डॉ० मेनारिया ने दी है। अत. सूरति मिश्र के सम्बन्ध मे उनके द्वारा प्रस्तुत सामग्री मे पूर्वोल्लिखित तथ्यों का ही पिष्ट-पेषण है।

संवत् २०११ वि० (१९५४ ई०) मे लखनऊ विश्वविद्यालय से डॉ० हीरालाल दीक्षित-रचित "आचार्य केशवदास" नामक शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ मे सूरति मिश्र की कतिपय रचनाओ की हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख मात्र मिलता है, जो इस प्रकार है—

१— जोरावरप्रकाश प्रथम प्रति, पृष्ठ संख्या २२०, छद सख्या ४२०८, स्थान–ला० विद्याधर' होरीपुर-दतिया।

२— जोरावरप्रकाश, द्वितीय प्रति, पृष्ठ १४४, छद संख्या २२६८, प्रतिलिपि-काल १८६१ ई० स्थान–रमणलाल हरिचन्द चौधरी बाजार कोसी, मथुरा।

३— रसगाहकचन्द्रिका, प्रतिलिपि काल १८१२ ई० स्थान रमणलाल हरिचन्द चौधरी, बाजार कोसी मथुरा।[३]

---

१ राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृष्ठ १३२

२. राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृष्ठ १३३

३. आचार्य केशवदास–डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ ९८

आगे इन ग्रन्थों का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार दिया गया है—

"जोरावरप्रकाश तथा रसगाहकचन्द्रिका सूरति मिश्र ने लिखी थी। यह आगरा निवासी और जहाँनावाद दिल्ली के नसरुल्लाखाँ की सेवा मे थे। यह सम्भवतः केशव के प्रथम टीकाकार थे। जोरावरप्रकाश की रचना सन् १७३४ मे नसरुल्लाखाँ उपनाम रसगाहक के कहने पर हुई थी।"[1]

डॉ० दीक्षित ने कविप्रिया की टीका का उल्लेख अपने शोध-प्रबन्ध मे किया है—

"कविप्रिया सटीक—पृष्ठ संख्या १००, छद-सख्या २२५०, प्रतिलिपि काल १८५६ वि० अथवा १७९९ ई०। प्राप्ति स्थान—जुगलकिशोर मिश्र, गधोली, जिला सीतापुर। यह टीका सूरति मिश्र ने लिखी थी। सूरति मिश्र का उल्लेख रसिकप्रिया की टीकाओ, जोरावरप्रकाश तथा रसगाहकचन्द्रिका के सम्बन्ध मे पूर्व पृष्ठो मे किया जा चुका है।"[2]

स्पष्ट है कि डॉ० दीक्षित ने समस्त तथ्य खोज-विवरणों से उद्धृत किये है।

१९५६ मे डॉ० भागीरथ मिश्र का रीतिकालीन साहित्य पर द्वितीय ग्रन्थ "हिन्दी रीति-साहित्य" प्रकाशित हुआ। इस ग्रन्थ मे मिश्र जी ने ध्वनि-सप्रदाय के अन्तर्गत सूरति मिश्र का निम्नाकित उल्लेख किया है।[3]

"सूरति मिश्र—आगरा के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। काव्य-शास्त्र पर इन्होने अनेक ग्रन्थ लिखे, जैसे अलकारमाला, रसरत्नमाला, रसगाहकचन्द्रिका, काव्यसिद्धान्त, रसरत्नाकर, सरसरस, जोरावरप्रकाश, अमरचन्द्रिका आदि। रसगाहकचन्द्रिका रसिकप्रिया की टीका है, जिसे इन्होने जहाँनावाद के नवाव नसरुल्लहखाँ के कहने पर स. १७९१ वि० मे लिखा। जोरावरप्रकाश रसिकप्रिया की दूसरी टीका है, जो १८०० वि० मे जोधपुर नरेश जोरावरसिंह के लिए लिखी गई। अमरचद्रिका सूरति मिश्र द्वारा लिखी गई सतसई की टीका है। इनकी वैतालपचीसी १८ वी शती के हिन्दी-गद्य का नमूना है। जिसे पहला उपन्यास माना जा सकता है। रसरत्नाकर १७६८ वि० का लिखा शृंगार व नायिका-भेद का

१. आचार्य केशवदास—डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ ९९
२ आचार्य केशवदास—डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ १००–१०१
३. हिन्दी रीति साहित्य-डॉ० भागीरथ मिश्र, प्रथम सस्करण १९५६ ई०, पृष्ठ—९५

ग्रंथ है। ध्वनि का निर्णय करने वाला इनका ग्रंथ काव्य-सिद्धान्त है, जिसमे काव्य-प्रकाश के आधार पर काव्य का विवेचन और ध्वनि-निरूपण है। काव्य की परिभाषा इन्होने अपनी निजी प्रस्तुत की है—

बरनन मन रजन जहाँ, रीति आलौकिक होइ।
निपुन कर्म कवि को जु तिहि, काव्य कहत सब कोइ॥

कवि का वह निपुण कर्म, जिसमे अलौकिक रीति से मनोरंजक वर्णन हो, काव्य है। यह बड़ी व्यापक परिभापा है, जो किसी भी सिद्धान्त-विशेष से सम्बन्ध नही रखती। ग्रंथ मे काव्य-कारण, प्रयोजन, शब्दार्थ तथा शब्द-शक्तियाँ, दोष, गुण, अलंकार आदि का वर्णन प्रमुखतया काव्यप्रकाश के आधार पर है। अत मे छंदों का भी वर्णन है। काव्यशास्त्र के सभी अंगो पर प्रकाश डालने वाला यह एक प्रामाणिक ग्रंथ है।

मिश्र जी के इस विवरण मे मी "रसरत्नमाला" तथा "रसरत्नाकर" सूरति मिश्र के पृथक ग्रन्थ बताये गये है, जबकि ये ग्रन्थ 'रसरत्न" के ही भिन्न नाम है। इसी प्रकार "सरस-रस" को सूरति मिश्र कृत ग्रन्थ मानने की पुरानी त्रुटि इसमें भी दुहराई गई है। "जोरावर-प्रकाश" जोधपुर-नरेश जोरावरसिंह के लिए लिखित बताई गई है, जबकि यह पुस्तक बीकानेर नरेश जोरावरसिंह के लिए लिखी गई थी। मिश्र जी ने काव्य-सिद्धान्त की रचना का आधार "काव्यप्रकाश" माना है।

संवत २०१५ वि० मे रीतिकाल से सम्बन्वित शोघ-प्रबन्ध डा० मनोहर-लाल गौड़ कृत 'घनानन्द और स्वच्छंद काव्य-धारा' प्रकाशित हुआ। सं० २०१६ वि० (१९५८ ई०) मे डॉ० सत्यदेव चौधरी कृत शोध-प्रबन्ध "हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य" छपा। इन दोनो ही ग्रन्थों में सूरति मिश्र का उल्लेख नही है। सन् १९९५ मे ही प्रकाशित हरिमोहन श्रीवास्तव के आलोचना ग्रन्थ "मध्यकालीन हिन्दी गद्य" मे सूरति मिश्र का नाम हिन्दी-गद्य के निर्माताओं में सम्मिलित किया गया है तथा लिखा गया है कि—

"सूरति मिश्र (१७६७) : ये आगरा के रहने वाले कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इन्होने ब्रजभाषा गद्य की सर्वांगीण उन्नति करने का प्रयास किया था। अमरचन्द्रिका नाम से बिहारी-सतसई की टीका की और "कविप्रिया तिलक" नाम से केशव की कविप्रिया के क्लिष्ट स्थलों की मार्मिक और स्पष्ट टीका लिखी है और इसके अतिरिक्त इन्होने कई ग्रन्थो की रचना की थी। संवत् १७६८ में "बैताल-पंचविशति" का ब्रजभाषा गद्य मे अनुवाद भी किया था।

इसी पुस्तक के आधार पर आगे चलकर लल्लूलाल जी ने खड़ी बोली मे वैतालपचीसी की रचना की। इनकी कविप्रिया-तिलक की भाषा का नमूना इस प्रकार है :—

"सीसफूल सुहाग अरु वैंदा माँग ए दोऊ आए पावडे सोहै
सोने के कुसुम तिन पर पैर धरि आए हैं।"[1]

यह परिचय मूल ग्रन्थो को देखकर नही लिखा गया है, खोज-विवरणो पर ही आधारित है। इसीलिए लेखक ने पद्य मे रचित 'अमरचन्द्रिका' एव कविप्रिया टीका को गद्य मे लिखी गई टीकाए मान लिया है। उसने वैताल-पचीसी एवं कविप्रिया का केवल उतना ही उल्लेख किया है, जितना खोज-विवरणो मे मिलता है।

सन् १९६४ ई० मे प्रकाशित 'हिन्दी के रीतिकालीन अलंकार-ग्रन्थो पर सस्कृत का प्रभाव' नामक अपने शोध-प्रबन्ध मे डा. कुन्दनलाल जैन ने सूरति मिश्र के अलंकार माला ग्रंथ का परिचय इस प्रकार दिया है .—

अलकारमाला : सूरति मिश्र (वि० संवत् १७६६ के आसपास) सूरति ने अलकारो पर अलकारमाला ग्रन्थ की रचना की थी :—

अलंकार कवितान के, सवन समुझिवे हेत।
रच्यो ग्रन्थ सूरति सु यह, लच्छिन लच्छ निकेत ॥२॥

इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति संख्या १४५८-२५७३ साहित्य सम्मेलन प्रयाग के पुस्तकालय मे प्राप्त है। परन्तु यह प्रति खण्डित है, जिसमे केवल १७ पृष्ठ है। इसमे न तो रचना-काल है और न किसी प्रकार का परिचय ही। यह अलकारो पर लिखा हुआ श्रेष्ठ ग्रन्थ जान पड़ता है। × × अलकारो के नाम और भेद जो यहाँ दिए गए है, वह प्राय कुवलयानद से समानता रखते है, परन्तु रूपक और व्यतिरेक के भेदो मे अन्तर है। × × इस ग्रन्थ की वर्णन-शैली बहुत कुछ चद्रालोक अथवा भाषा-भूषण के ढग पर है। अधिकतर एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण देने का प्रयास किया गया है।

लेखक की आलोचना-शक्ति का अनुमान होता है और साथ ही ऐसा जान पडता है कि कवि ने इस ग्रन्थ की रचना आचार्य बन कर ही की थी, कवि बन कर नही।[2]

---

१. मध्यकालीन हिन्दी गद्य, पृष्ठ १००-१०१

२. हिन्दी के रीतिकालीन अलकार-ग्रन्थो पर संस्कृत का प्रभाव—डॉ० कुन्दन लाल जैन, साहित्य-निकेतन, बरेली, पृ० स० १९६४ ई०

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि लेखक ने अलंकारमाला की जिस प्रति को आधार बनाया है, वह १७ पृष्ठों की खण्डित प्रति है और उसने उसी के आधार पर सूरति मिश्र के सम्बन्ध मे अनुमान-पद्धति से अपने विचार व्यक्त किए है, तथा आधार-ग्रन्थो का उल्लेख डा० भागीरथ मिश्र के इतिहास के आधार पर किया है।

डॉ० जैन के शोध-प्रबन्ध के पश्चात् रीति-कालीन अलंकार-साहित्य का विवेचन प्रस्तुत करने वाले दो अन्य शोध-प्रबन्ध प्रकाशित हुए :—

(१) रीतिकालीन अलकार-साहित्य का शास्त्रीय विवेचन – डॉ० ओमप्रकाश शर्मा।

(२) हिन्दी मे शब्दालकार–विवेचन – डॉ० देशराजसिह भाटी।

किन्तु इन दोनो ही ग्रन्थो मे सूरति मिश्र के किसी भी ग्रन्थ का उल्लेख नही मिलता। रीतिकालीन साहित्य पर विचार करने वाले दो अन्य शोध-प्रबन्ध है—

१—हिन्दी काव्य-शास्त्र मे रस-सिद्धान्त – डॉ० सच्चिदानद चौधरी

२—रीतियुगीन काव्य – डॉ० कृष्णचन्द्र वर्मा

इन ग्रन्थों मे भी सूरति मिश्र का कोई उल्लेख नही किया गया।

निष्कर्ष

पूर्वोक्त समस्त अध्ययन से स्पष्ट है कि गार्सा द तासी से लेकर अद्यावधि लिखित साहित्य के इतिहासों, खोज-विवरणो तथा रीतिकाल से सम्बन्धित शोध-प्रवन्धो एव आलोचना-ग्रन्थो मे सूरति मिश्र के सम्बन्ध मे जो ज्ञान प्रकाशित हुआ है, वह अत्यन्त अल्प एव पिष्ट-पेषित है तथा उसको उनके मूल ग्रन्थो से प्रमाणित नही किया गया है। आरंभ मे गार्सा द तासी, शिवसिंह सैंगर, मिश्रबन्धुओ तथा रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानो व खोज-कर्त्ताओ ने सूरति मिश्र की रचनाओ के सम्बन्ध मे जो चलते विवरण प्रस्तुत किए थे, उन्ही को भाषा बदल कर आगे के सभी ग्रन्थो मे दुहराया जाता रहा है। पुनरावृत्ति और पिष्ट-पेषण की इस प्रक्रिया से सूरति मिश्र के जीवन और साहित्य का जो परिचय पाठको के लिए सुलभ हुआ, उसमे अनुमान की प्रधानता है तथा भ्रान्तियों का ही विकास हुआ है। न तो अभी तक उनके ग्रन्थो की प्रामाणिक नामावली सामने आ सकी है, न सूरति मिश्र के व्यक्तित्व और कृतित्व के परीक्षण का ही किसी ने प्रयास किया है। वास्तविक बात यह है कि सूरति मिश्र का एक भी ग्रन्थ आज तक प्रकाशित नही हुआ है।[1] जहाँ तक हस्तलिखित

१. लेखक के सम्पादन मे प्रकाशित भक्ति विनोद को छोड कर।

ग्रन्थो का प्रश्न है, वे भी खोजकर्त्ताओ ने नही देखे है और चलते विवरण लिए है। विद्वानो ने काव्यसिद्धान्त की पाण्डुलिपि को छोड किसी भी अन्य ग्रन्थ को स्वय अध्ययन का विषय बनाया हो, ऐसा सिद्ध नही होता। इस प्रकार खोज-विवरणो की सामग्री को ही अन्तिम प्रमाण माना जाता रहा है।

लेकिन यह स्पष्ट है कि जो सामग्री आधार बनी है, उससे भी विद्वानों ने सूरति मिश्र के साहित्य की गभीरता और उत्कृष्टता को समझा है तथा सभी ने एक स्वर से उन्हें रीतिकाल का एक श्रेष्ठ कवि एव आचार्य घोषित किया है। एक उत्कृष्ट टीकाकार होने तथा रीतिकाल मे साहित्यिक गद्य लिखने के लिए आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र तक की विद्वत्परम्परा मे उनकी प्रशसा हुई है।

ब–सूरति मिश्र के अज्ञात ग्रन्थों की हस्तलिखित प्रतियाँ

विषय-प्रवेश

सूरति मिश्र कृत कतिपय ग्रन्थो की एकाधिक हस्तलिखित प्रतियों का खोज-विवरणों में उल्लेख मिलता है। उस उल्लेख के आधार पर अब तक विभिन्न साहित्येतिहासों, शोध-प्रबन्धो एवं आलोचना-ग्रन्थों में सूरति मिश्र की महिमा का आख्यान होता रहा है। मेरे अन्वेषण से पूर्व उनका एक भी ग्रन्थ किसी भी विद्वान के प्रयत्नों से प्रकाशित नहीं हो सका था। खोज-विवरणों में उनके ग्रन्थों की उपलब्धि के जिन स्रोतो का उल्लेख है, उनसे भी वे ग्रन्थ प्राप्त करना असभव ही रहा है। इसके दो मुख्य कारण है: या तो वे व्यक्ति स्वर्गवासी हो चुके है, जिनके पास खोजकर्त्ताओं ने हस्तलिखित प्रतियाँ देखी थीं; या जो जीवित है, वे उन प्रतियों का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। अतः अब खोज-विवरणों मे दिए गए उल्लेखो की इतनी ही उपयोगिता है कि उनके आधार पर सूरति मिश्र के ग्रन्थो का सूची बनाकर नए सिरे से खोजबीन की जा सकती है। मैंने इसी दिशा मे अग्रसर होकर विभिन्न संग्रहालयों तथा कतिपय व्यक्तियों से, जिनका किसी भी खोज-विवरण में उल्लेख नहीं है,—सूरति मिश्र कृत सत्रह ग्रन्थों की एकाधिक हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध की हैं।

उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थ :

१. भक्ति-विनोद
२. नख-सिख
३ रसगाहक चन्द्रिका
४. रसरत्न (सटीक)
५. जोरावरप्रकाश
६.
७, [illegible]त
८

९ दानलीला
१० अलंकारमाला
११ काव्यसिद्धान्त
१२. छंदसार-पिंगल
१३. कामधेनु-कवित्त
१४ प्रबोधचन्द्रोदय भाषा
१५ अमरचन्द्रिका
१६ कविप्रिया-टीका
१७ रसरत्न-टीका

यहाँ इन ग्रन्थो की विभिन्न प्रतियो का सक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

१ भक्ति-विनोद

मुझे इस ग्रन्थ की निम्नाकित प्रतियाँ प्राप्त हुई है :—

(क) उदयपुर की प्रति

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उदयपुर सग्रहालय मे यह प्रति सग्रहीत है। इसका ग्रन्थाङ्क ३६६/२२१६ है। गुटका मे यह रचना पत्र ३० से आरम्भ होकर पत्र ५६ पर समाप्त हुई है। इसका आकार २४ ६ से० मी० × १६·३ से० मी० है तथा पुराने बाँसी कागज का प्रयोग हुआ है। सवत १८७८ वि० मे महाराज कुमार जवानसिंह के पठनार्थ इसको लिखा गया था, जैसा कि इसकी निम्नाकित पुष्पिका से स्पष्ट है —

"इति श्री सूरति मिश्र विरचित भक्ति विनोद ग्रन्थ समाप्त। सवत १८७८ भादुवा सुद १ भौम वासरे पठनार्थ धर्ममूर्ति महाराज श्री १०८ श्री जवानसिह जी चिरजीव.। लिखित भट्ट दयाराम जोतसी। श्री। श्री ।।"

कागज तथा लिपि दोनो से इस हस्तलिखित प्रति की प्राचीनता स्पष्ट है। इस प्रति मे अन्तिम छन्द की सख्या २२४ है किन्तु पाण्डुलिपि मे कुल २२३ छन्द ही है। वस्तुत लिपिकर्त्ता ने भूल से १८२ छद की क्रम-सख्या १८३ कर दी है, जिसके कारण अन्तिम छद सख्या बढ गई है। सभी प्रसग अलग-अलग शीर्षको मे प्रस्तुत किए गए हैं। प्रति सुवाच्य, पूर्ण तथा सु-स्पष्ट है। यह महाराजा के सग्रहालय की प्रति है, अत प्रामाणिक मानी जा सकती है।

(ख) करहल (मैनपुरी) की प्रति

मुझे यह प्रति करहल, जिला मैनपुरी, के निवासी स्वर्गीय पण्डित बाबूराम तिवारी के घर उनके अनुज पण्डित पुत्तूलाल तिवारी के माध्यम से प्राप्त हुई है। इसकी पुष्पिका मे लिपिकाल अंकित नही है। यथा—

"इति श्री भक्तिविनोद ग्रन्थ सूरति मिश्र विरचितं समाप्त।"

यह प्रति पूर्णत. सुवाच्य तथा सुस्पष्ट है। इसमे कुल छद २२३ है, और अन्तिम छद की संख्या भी २२३ दी गई है। छदो का क्रम 'क' प्रति से मिलता है।

इसका पाठ अन्य सभी प्रतियों से अधिक शुद्ध है।

(ग) भरतपुर की प्रति

भरतपुर के राजकीय जिला पुस्तकालय में यह प्रति गुटका संख्या १०३–१०७ मे क्रम सख्या १०६ पर सुरक्षित है। इसका आकार $\frac{२० \times २६}{८}$ इंच है। हर पृष्ठ पर २१ पक्तियाँ तथा ६ शब्द है। इस प्रति मे अन्तिम छंद की सख्या १४४ पडी हैं, किन्तु वास्तव मे इस प्रति मे कुल १३९ छन्द ही सकलित है; शेष ५ छन्द जो नही है, उनकी क्रम-सख्या निम्नाकित है.—

४२, ४६, ८१, ९४ तथा ११७!

क्रम-संख्या ११७ पर वर्षगाँठ की वार्ता को स्थान दिया गया है। क, ख तथा ङ प्रतियो के मूल विषय-सम्बन्धी अन्तिम छन्द संख्या २२२ से इस प्रति का अन्तिम छन्द १४४ मिलता है, किन्तु शेष छन्दों मे प्राय: क्रम-हीनता है। 'घ' प्रति मे भी मूल विषय का अन्तिम छन्द यही है। 'ग' प्रति मे 'क' एवं 'ख' का पुस्तक-सम्बन्धी छन्द २२३ नही है। इस प्रति मे कुछ नए छन्द भी है, जो अन्य प्रतियो में नही मिलते। उनकी क्रम-सख्या ४७, ४८, ४९, ७३ तथा १२२ है। ये छन्द यहाँ दिए जाते है.—

४७— विघन जु है हरि भगति में,
ते काटहु गहि टेक।
यह दुख का सन कहौ तुम,
विघन विनासन एक।

४८— सहजहि रवि भगवानु ये,
लखि तम करत विनास।
ेम प्रनाम करै करैं—
छन जन-मन-तम-नास॥

४६— तारक पाँच गकार है,
सेव सदा स्नुति मेव।
गोविंद गीता गायत्री,
गणपति गुरुदेव ॥

७३— कृष्ण जन्म वृप चंद्र धुज,
श्रुति रवि सर वुध जानि।
छठे सुक्र सनि राहु नव,
कुज गुरु औ सिव मानि ॥

१२२— सीस भाल स्नुति नासिका,
ग्रीवा उर कटि वाहु।
मूल पानि अंगुलि चरन,
भूपन रवि अवगाहु ॥

अन्य प्रतियो के निम्नाकित क्रम–सख्याओ वाले छन्द इस प्रति मे नही है—

२१, २३ से २६, २६, ३१, ३६, ४०, ४२, ४४, ४७, ५०, ५३, ५६ से ५८, ६० से ६२, ६४, ६५, ६७ से ८६, ८८ से १०८, ११०, १११, १५४, १७६, १७७, १७६, १८४, १८६, १८८, १६१ से २०३, २१२ तया २१३।

इस प्रकार भरतपुर वाली प्रति मे ५ नए छन्द है। 'क', 'ख' 'घ' तथा 'ङ' प्रतियो के ८८ छन्द नहीं है। इस 'ग' प्रति के अन्त मे कोई पुष्पिका नही दी गई है, वल्कि उसके पश्चात+सूरति मिश्र की ही दो अन्य रचनाएँ रामचरित और कृष्णचरित सकलित है। कृष्णचरित के पश्चात एक पुष्पिका दी गई है, जो इस प्रकार है :—

"श्री कृष्णायनमः। इति श्री भक्तिविनोद रामकृष्णचरित्र सूरत कवि कृत सम्पूर्ण शुभमस्तु। श्री।"

जिस गुटका मे भक्तिविनोद सकलित है उसकी अन्तिम पुस्तक-संख्या १०७ पर 'नवलरसचन्द्रोदय' है जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री मन्महाराज जदुकुलवसावतस व्रजेन्द्रनद नृप नवलसिंघ विनोदार्थे सोभ कवि विरचिते नवलचन्द्रोदये हावादि भेद कथनं नाम सप्तमोल्लास'। शुभमस्तु।"

इस प्रकार गुटका की अन्तिम पुस्तक की पुष्पिका में भी लिपि-काल या रचना-काल नही दिया गया है। इस पुस्तक के आरम्भ मे राजा बदन सिह का उल्लेख किया गया है। गुटका के आरम्भ मे महाराज रामसिह कृत "जुगल विलास" "घनाक्षरी" तथा "रससिरोमनि" नामक तीन ग्रन्थ सकलित हैं। इस प्रकार भरतपुर के तीन राजाओं बदनसिह, नवलसिह एवं रामसिह से सम्बन्धित पुस्तको के बीच मे संकलित यह प्रति अप्रामाणिक तो नही मानी जा सकती। इसकी लिपि तथा कागज से भी इसकी प्राचीनता और प्रामाणिकता असदिग्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रतिलिपि मे जो छद सकलित है वे ही आरम्भ में भक्तिविनोद के नाम से कवि ने लिखे थे। बाद मे उसने भक्ति-सम्वन्धी वे छन्द लिखे जो जोधपुर, वीकानेर, करहल एवं उदयपुर वाली प्रतियो मे मिलते हैं। ये छंद विभिन्न प्रसंगो के क्रम मे स्थान पाते गए। इसलिए ग्रन्थ की छद-संख्या का क्रम तो बदल गया, किन्तु प्रसगान्तर नही आया। शिव और शक्ति सम्बन्धी लगभग सभी छंद भरतपुर की प्रति मे नही मिलते, किन्तु अन्य सब प्रतियों में मिलते है। इस प्रति की लिपि करहल की प्रति को छोड़ शेष सब प्रतियों की तुलना मे अधिक शुद्ध है तथा कोई चरण छूटा भी नही है जबकि शेष तीन प्रतियों में कहीं-कही शब्द ही नही, चरण भी छूट गए है। इन नई बातों के होते हुए भी लिपि-काल के अभाव मे यह अनुमान लगाना कठिन है कि यह प्रति कितनी प्राचीन है।

(घ) बीकानेर की प्रति

यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, शाखा-बीकानेर के संग्रहालय मे क्रमाङ्क ११७७५ सग्रहाक ६७८८ पर संग्रहीत है। इसकी पृष्ठ-संख्या ६३ से ९२ तक है तथा अन्त मे निम्नांकित पुष्पिका दी गई है—

"इति श्री भक्तिविनोद सूरति मिश्र विरचिते समय-समय के कवित्त वर्नन संपूर्ण। लिखत सिवचन्द नागौर मधे लिछमीधर विद्याधर गदाधर पठनार्थं शुभं भवतु। संवत् १८३९ रा जेठ दुतीक सुद ८।"

इस प्रति की छद-संख्या उदयपुर पाली प्रति की छंद-सख्या से मिलती है। कागज तथा लिपि दोनो से इसकी प्राचीनता तथा प्रामाणिकता असं-दिग्ध है।

(ङ) जोधपुर की प्रति—

यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के प्रधान कार्यालय जोधपुर मे संरक्षित है। इसका ग्रन्थाङ्क ४०१९७ है। पुष्पिका में लिपिकाल १९१९

वि० दिया गया है। इस प्रति के कई पृष्ठ दीमक ने खण्डित कर दिए है, जिससे पूर्ण पाठ शुद्ध नही रह गया है। पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री सूरति मिश्र विरचितं भक्तिविनोद ग्रन्थ समाप्त। मवत् १६१६ मगसिर विद ॥८॥ भृगुवासरे लिखेतमिद पुस्तकं चौबीगा नदरामेरा।"

इस प्रति की छद-सख्या उदयपुर करहल तथा बीकानेर की प्रतियो मे मिलती है। छदो के भीतर चरणान्त मे विराम चिह्न न होने से इस प्रति का पाठ उदयपुर की प्रति के समान सुवाच्य नही है। लिपिकार ने भी अनेक शब्दो को अशुद्ध रूप मे लिखा है, तथापि प्रामाणिकता और प्राचीनता की दृष्टि से इस प्रति का पर्याप्त महत्त्व है।

प्राचीनतम प्रामाणिक प्रति

'भक्तिविनोद' की पूर्वोक्त ५ प्रतियो मे भरतपुर की प्रति मे सबसे कम छद है। सभी प्रतियों का आरम्भ एवं अन्त समान है। इसमे से किसी भी प्रति को अप्रामाणिक नही कहा जा सकता, किन्तु जहाँ तक प्राचीनतम प्रति का प्रश्न है, भरतपुर वाली प्रति सबसे प्राचीन प्रतीत होती है। उसके पश्चात् लिपिकाल की दृष्टि से बीकानेर की प्रति का स्थान है। किन्तु वह अधिक स्पष्ट नही है। प्राचीनता की दृष्टि से तीसरा स्थान उदयपुर की प्रति को दिया जा सकता है। इसके पश्चात् हम करहल तथा जोधपुर की प्रतियो को रख सकते है। इनमें जोधपुर की प्रति कीटविद्ध होने से अस्पष्ट हो गई है। केवल उदयपुर एव करहल की प्रतियाँ ही अधिक स्पष्ट हैं। हमने सब प्रतियो को मिलाकर प्रामाणिक पाठ सम्पादित किया है। उदयपुर एव करहल की प्रतियाँ उस पाठ का मूल आधार रही है। वह सम्पादित पाठ सूरति मिश्र ग्रन्थावली भाग १ "भक्तिविनोद" के नाम से १६७१ मे प्रकाशित हो चुका है।

२—नख-सिख

इस पुस्तक की दो प्रतियां उपलब्ध हुई है। प्रथम 'क' प्रति करहल जिला मैनपुरी के निवासी प० बाबूराम तिवारी के घर उनके अनुज पं० पुत्तूलाल तिवारी से प्राप्त हुई है तथा द्वितीय 'ख' प्रति अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर से प्राप्त हुई है।

(क) करहल वाली प्रति

इस प्रति मे ४१ छद है। कागज अधिक पुराना नही है और लिपि भी सुवाच्य है। अन्त मे जो पुष्पिका दी गई है, उससे इसका लिपि-काल

१६७५ वि० निश्चित होता है। इसका लिपि-कर्त्ता सीताराम नामक व्यक्ति है। प्रति का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—"श्री गणेशायम. । श्री गोपी-वल्लभायनमः । अथ नखसिख वर्णन।"

अन्त मे यह पुस्पिका दी गई है—"इति श्री सूरति मिश्र विरचितं नखसिख बरनन सम्पूरनं । लिखितं सीतारामेण भाद्रमासे शुक्लपक्षे दुतिया सवत् १६७५ वि० ।।श्री।। शुभम् ।।"

(ख) बीकानेर की प्रति

यह प्रति अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर मे ग्रन्थ-संख्या ७३८६ पर सुरक्षित है। इस ग्रन्थ की पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री सूरत कवि कृत नख-सिख वर्णन।"

इस प्रति में लिपि-काल नही दिया है, न लिपि-कर्त्ता का ही नामोल्लेख है।

३—रसगाहकचन्द्रिका

'रसगाहकचन्द्रिका' की एक प्रति प्राप्त हुई है। यह प्रति राजस्थान विद्यापीठ के साहित्य-सस्थान संग्रहालय मे ग्रन्थाङ्क ३८ पर सुरक्षित है। इस प्रति की अन्तिम पुष्पिका इस प्रकार है—

"रसिकप्रियाटीकाया अनुरस वर्णनं नाम पोडशो विलास ।।१६।। ग्रन्थ सपूर्णो ।। समाप्त ।। सवत् १८६२ ।। मिति मार्गसिर सुदि १४ ।।"

प्रति की लिपि तथा कागज दोनों से उसकी प्राचीनता प्रमाणित होती है।

४—रसरत्न और उसकी टीका

इम पुस्तक की निम्नाकित प्रतियाँ प्राप्त हुई है—

(क) उदयपुर की प्रतिष्ठान वाली प्रति

यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उदयपुर शाखा कार्यालय से प्राप्त हुई है। इसका ग्रन्थाक ३६६–२२२० है। भक्तिविनोद वाले गुटका मे पत्र १२० से १४७ तक यह पुस्तक मिलती है। इस प्रति मे मूल रसरत्न के साथ व्रजभाषा गद्य मे उसकी टीका भी है। इसकी पुष्पिका से प्रकट है कि यह प्रतिलिपि सवत् १८७८ मे दयाराम ज्योतिषी द्वारा उदयपुर के महाराजकुमार श्री जवानसिह के लिए की गई थी। पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री सूरति कवि विरचिते रसरत्न टीका सपूरन लिषि है पठनार्थ महाराजकुमार श्री श्री श्री श्री जवानसिह जी चीरजीव रहज्यौ लिषितं जोतसी दयारामेण श्रीरस्तु ।। सवत् १८७८ फागुनवद ८ गुरुवारे श्री श्री श्री श्री ।।"

(ख) उदयपुर की संस्थान वाली प्रथम प्रति

राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर के साहित्य-संस्थान-सग्रहालय मे 'रसरत्न' की दो प्रतियाँ मिलती है। प्रथम प्रति पूर्ण है एव उसमे मूल के साथ टीका भी है। उसकी ग्रन्थ-सख्या २१५ है। इस प्रति के अन्त मे दी गई पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति सूरति कवि विरचिते रसरत्न टीका सम्पूर्ण सवत् १६२७ मार्ग-सिर विद ७ भोमे लिखित ब्राह्मण दसोरा कोटेस्वर उदयपुर मध्ये।"

इस पुष्पिका के पश्चात् तीन छन्द दिये गये है जो लिपिकर्त्ता ने जोडे है और अन्त मे फिर लिखा है—

"या पुस्तक राव वखतावर जी की।
पठित चिरजीव माधवसिह जी॥
श्रीरस्तु। शुभ भवतु॥"

इस पुष्पिका मे सिद्ध है कि यह प्रति माधवसिह के पठनार्थ राव वखतावर ने कोटेस्वर दशोरा से उदयपुर मे लिखाई थी। पुस्तक की लिपि पर्याप्त अशुद्ध है तया सुवाच्य भी नही है।

(ग) बीकानेर की प्रति

यह प्रति अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर मे उपलब्ध है। इसमे ग्रन्थाङ्क तथा पुष्पिका नही है। कागज तथा लिपि से यह प्रति अधिक प्राचीन प्रतीत नही होती।

(घ) उदयपुर की संस्थान वाली द्वितीय प्रति

यह प्रति राजस्थान विद्यापीठ के साहित्य संस्थान-संग्रहालय में क्रम-सख्या १२२ पर सुरक्षित है। यह प्रति अपूर्ण है, क्योकि इनमे पत्र-संख्या १५, १६, १७, २६, २८, २९ तथा ३० नही है। इसका कागज पुराना है। यह 'ख' प्रति से पूर्व लिखित प्रतीत होती है, किन्तु प्रतिष्ठान की प्रति से अधिक प्राचीन नही है। पुष्पिका के अभाव मे इसके लिपि-काल का पता लगा सकना असभव है।

(ङ) जोधपुर की प्रतियाँ

पूर्वोक्त प्रतियों के अतिरिक्त दो प्रतियाँ ग्रथाक १३७७६ (८) तथा २०४४९ (१) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के जोधपुर-सग्रहालय मे भी सुरक्षित है। इन दोनो प्रतियो का लिपि-काल स्पष्ट नही है। कागज तथा लिपि से भी ये दोनो प्रतियाँ 'क' प्रति से अधिक प्राचीन प्रतीत नही होती।

(च) **करहल की प्रति**—यह प्रति करहल (मैनपुरी) के पण्डित बाबूराम तिवारी के घर प्राप्त हुई है। इसका कागज बाँसी तथा लिपि प्राचीन है। इसमे 'क' प्रति के समान पूर्ण टीका तो मिलती है साथ ही इसमे कवि-परिचय सम्बन्धी ८ दोहे भी अन्त मे मिलते है। जो अन्य प्रतियो मे नही है लिपि-कर्त्ता का नाम 'इन्दुमणि' उल्लिखित है। इन्ही इन्दुमणि द्वारा लिखित कविप्रिया टीका भी मिली है जिसका परिचय आगे दिया गया है।

प्राचीन एवं शुद्ध प्रति

पूर्वोक्त सभी प्रतियो मे प्राचीनतम, शुद्ध, सुवाच्य तथा अधिक प्रामाणिक 'क' प्रति ही है जो राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान शाखा-सग्रहालय उदयपुर मे उपलब्ध है और जिसका अधिकाश पाठ करहल वाली प्रति से भी मिलता है।

५—जोरावरप्रकाश

इसकी ६ प्रतियाँ उदयपुर, भरतपुर, इलाहाबाद तथा बीकानेर मे उपलब्ध हैं।

(क) उदयपुर की प्रतिष्ठान वाली प्रथम प्रति

यह प्रति प्रतिष्ठान के उदयपुर-सग्रहालय मे ग्रन्थाङ्क ६५५—२७३५ पर सुरक्षित है। इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

"।। सम्पूर्णः ।। संवत् १८७३ रा मिति ज्येष्ठ शुक्ल पक्ष ३ चन्द्रवासरे लिखित पचौली भुवानीराम की ग्रन्थ सख्या उन्मान ३० वॉ।"

इसके पश्चात् निम्नांकित अश मिलता है—

"इति श्रीमन्महाराज श्री जोरावरसिह विरचिते रसिकप्रिया विवरणे जोरावरप्रकासे अनरस वर्ननं नाम षोडश विलास । इति श्री कवि केसौदास कृत्वा ग्रन्थ रसिकप्रिया समाप्त ।।१।। श्री श्री ।। पोथी राइ भुवान की लिखी भुवानीदास ।। वरण मात्रा चूक जौ कवि कीज्यौ सरास ।।१।। शुभमस्तु ।।"

इस प्रकार यह सवत् १८७३ की प्रतिलिपि सिद्ध होती है।

(ख) उदयपुर की प्रतिष्ठान वाली द्वितीय प्रति

यह प्रति प्रतिष्ठान मे ग्रन्थ-सख्या ८३०—२६४० पर सुरक्षित है। इसकी पत्र-सख्या १ से १३५ तक है। आकार ३२·५ × २०·५ से० मी० है। प्रथम पत्र दो बार आया है। इसमे तीन चित्र भी है। लिपि-कर्त्ता दुर्लभराम दशोरा तथा लिपि-स्थान उदयपुर है। लिपि-काल १६२६ वि० दिया गया है। पुष्पिका इस प्रकार है—

'इति श्री मन्महाराजाधिराज श्री जोरावरसिंह विरचिते रसिकप्रिया टीका विवरणे जोरावरप्रकाशे रस अनरस वर्णन नाम शोडपो विलास. । सवत् १६२६ रा वर्खे शाके १७६१ प्रवर्तमाने पौष मासे कृष्णपक्षे १३ त्रियोदश्या गुरुवासरे मिद पुस्तकं समाप्त । स्वस्ति श्रीमन्महेन्द्र महाराजाधिराज महाराजा जी श्री श्री श्री शभूसिंह जी विजय राज्ये मिद पुस्तक स्वय पठनार्थं दुवे राव वगतावर जी लिखित ब्राह्मण दशोरा दुर्लभराये हस्ताक्षर नग्र उदयपुर मध्ये ।"

यह प्रति उदयपुर के महाराजा शभूसिंह के राज्य-काल मे लिखी गई थी, अत इसकी प्रामाणिकता असदिग्ध है ।

(ग) भरतपुर वाली प्रति

यह प्रति भरतपुर के जिला पुस्तकालय मे गुटका सख्या ४४ (क) मे सुरक्षित है । इसमे केवल ६३ पत्र है । यह प्रति अपूर्ण है तथा कागज एव लिपि से भी यह अधिक प्राचीन सिद्ध नही होती ।

(घ) उदयपुर की संस्थान वाली प्रथम प्रति

यह प्रति राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर के साहित्य-संस्थान मे उपलब्ध है । इमका ग्रन्थाक २६० है । पाण्डुलिपि का आकार ४½" × ५½" है । ग्रन्थ का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"श्री कुंजविहारी जी सहाय । अथ सूरति कृति रसिकप्रिया की टीका लिख्यते ।"

कवित्त—पूजि मन बाकौ आदि माने जग ताकौ,
नर धाइ नेक ताकों सुख लहे सिद्ध गति कौ ।
परम दयाल वडे पूरन कृपाल करे,
छिन मे निहाल दैके आनन्द सु अति कौ ।
चरन सरनि जाकी भरत मनोरथनि,
सूरति भवन तीन्यौ इहै मतौ मति कौ ।
हेत के सुखासन कौ वुद्धि के प्रकासन कौ,
विघन विनासन कौ नाम गणपति कौ ।।

अन्त इस प्रकार है—

"जोरावरपरकास कौ, पढ़ै सुनै चितलाय ।
वुद्धि प्रकास अरु भक्ति निज, ताहि देहि हरि राय ।

इति श्रीमन्महाराज श्री जोरावरसिह विरचिते रसिकप्रिया विवरणे जोरावरप्रकासे अनरस वर्नन नाम षोडशो विलास । श्रीरामजी ।"

पत्र १६६ के पश्चात् लिपि बदल गई है। पुस्तक मे कुल २४३ पत्र है। कागज पुराना तथा देशी है एव हस्त-लिपि से भी प्रति की प्राचीनता सिद्ध है, तथापि लिपि-काल का ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन है।

(ङ) संस्थान वाली द्वितीय प्रति

राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर के साहित्य-सस्थान मे यह प्रति उपलब्ध है। इसकी ग्रन्थ-सख्या ३१ है। इसका आरम्भ—"श्री गणेशायनम. । अथ जोरावरप्रकास लिख्यते ।"—पक्तियो से हुआ है तथा तत्पश्चात् मगलाचरण का पूर्वोल्लिखित कवित्त है। अन्त की पुष्पिका इस प्रकार है —

"इति श्री मन्महाराज श्री जोरावरसिह विरचिते श्री रसिकप्रियाया विवर्णे जोरावरप्रकासे रस-अनरस वर्नन नाम सोडमो प्रभाव ।१६।

इति श्री रसिकप्रिया टीका जोरावरप्रकास कवि सूरति कृत संपूर्ण । समाप्त । शुभमस्तु । श्रीरस्तु । कल्याणमस्तु । सवत् १६१६ का साख्ये १७ सै ८६ का आषाढ शुक्लपक्ष ४ भौम वासरे लिखित ब्रह्मन् फतेराम गौत्र सांडल रूप खण्डेलवाल ।।" किन्तु कागज और लिपि दोनों से ही यह प्रति १६१६ वि० के वाद लिखी गई प्रतीत होती है।

(च) संस्थान वाली तृतीय प्रति

यह प्रति भी राजस्थान विद्यापीठ के साहित्य सस्थान मे सुरक्षित है। इसका क्रमाक ३६४ है। इसका आकार १५"×६" तथा कागज देशी एव लिपि सुवाच्य है। इसका आरम्भ "श्रीगणेशायनम. । अथ ग्रन्थ आरभ्यते ।"—लिखकर केशवदास कृत मगलाचरण से किया गया है। इस प्रति मे राजा के वश से सम्वन्धित सूरति मिश्र कृत वे २१ छद मगलाचरण से पहले नही दिए गए, जो अन्य प्रतियो मे मिलते है। अन्त मे इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

"लिखित जोगी वनीरामेण राव कवरजी श्री बुधजी वाचनार्थं सवत् १६१७ रा श्रावणवद १३ ।"

इस प्रकार यह १६१७ मे लिपिवद्ध की गई है। इसमे १५"×६" आकार के १५८ पत्र है।

(छ) संस्थान वाली चतुर्थ प्रति

यह प्रति राजस्थान विद्यापीठ के साहित्य-सस्थान के क्रमाङ्क १८७ पर सग्रहीत है। इसका आरम्भ इस प्रकार है—"श्रीगणेशायनम. । अथ टीका

जोरावरप्रकाश प्रारम्भ ।" तत्पश्चात् सूरति मिश्र कृत मगलाचरण है और जोरावरसिह के वश का परिचय २१ दोहो तक चला है। इसका हस्तलेख वहुत सुन्दर तथा सु-स्पष्ट है। इसमे १५"×१०" आकार के १३२ पत्र हैं। अन्त की पुष्पिका इस प्रकार है—

"सवत् १६२६ वर्षे शाके प्रवर्तमान्ये। पौष कृष्णा ६ नवम्या। चन्द्र-वासरे। मिद पुस्तक समाप्त। स्वास्ति श्री महि महेन्द्र माहाराजाधिराज महाराजा श्री श्री १०८ श्री श्री श्री श्री शभूसिह जी विजय राज्ये। तत् शुभचितक शेवागीर राव श्री वगतावरसिह जी चिरंजीव माधवसिह जी पठनार्थ। लिखित ब्राह्मण दशोरा कृष्णलालेन हस्ताक्षर। नग्र श्री उदैपुर मध्ये वास्तव्य। श्रीरस्तु। कल्याणमस्तु।"

इससे सिद्ध है कि यह प्रतिलिपि सवत् १६२६ वि० मे कृष्णलाल दशोरा ने माधवसिह के पठनार्थ तैयार की थी।

(ज) इलाहावाद वाली प्रथम प्रति

हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहावाद के सग्रहालय मे यह प्रति सग्रहीत है। इसमे १४४ पत्र है। आकार १०·८"×७ ५" है इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"।। श्री गणेशायनम। अथ जोरावर प्रकास लिख्यते। कवित्त—

पूजि मन वाकौ आदि मानै जग जाकौ
नर ध्याइ नैकु ताकौ सु लहै सिद्धि गति कौ।

परम दयाल वडे पूरन कृपाल करै
छिन निज निहाल दैकै आनँद सु अति कौ।

चरन सरन जाकी भरत मनोरथन
सूरत भवन-तीनौ यहै मतौ मति कौ।

हेतु है सुरवासन कौ वुद्धि के प्रकासन कौ
विघन विनासन कौ नाम गणपति कौ ।।१।।'

अन्त की पुष्पिका इस प्रकार है—

"दोहा— जोरावर परकास कौ, पढै गुनै चित लाइ।
वुधि प्रकास अरु भक्त निज, ताहि दैहि हरि राइ ।।"

इति श्री मन्महाराज श्री जोरावर परकासे जोरावरसिह पिरचिते रसिकप्रिया विवर्णे अनरस वर्णनं नाम षोडसो विलास ।।१६।।

शुभमस्तु सवत् १६१० रा वैसाख सुदि द्वादस्या गुरुवासरे ।
याद्दशं पुस्तकं द्दष्टा ताद्दश लिखित मया ।
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न किचन ।।"

इस प्रकार यह प्रति १६१० वि० मे लिखी गई है । प्राप्त विवरण से पता चलता है कि यह प्रति बूँदी (राजस्थान) के राव मुकुन्द सिह से सम्मेलन को भेट मे प्राप्त हुई थी । यह प्रति वहुत स्पष्ट तथा सुवाच्य है ।

(झ) इलाहवाद वाली द्वितीय प्रति—

यह प्रति भी सम्मेलन के सग्रहालय मे सुरक्षित है । इसमे १७५ पत्र है तथा आकार ८"×५·५" है । इसका लिपिकाल अन्त मे १६१४ वि० दिया गया है —

"इति १६१४ मिति वैशाख वदि ६ रविवार लिखित विक्रम नगर मध्ये ।"

इससे यह प्रकट है कि यह प्रतिलिपि वीकानेर मे की गई थी । प्राप्त विवरण से पता चलता है कि यह प्रति जोधपुर के श्री लालचन्द दाधीच ने सम्मेलन को भेट की थी । यह प्रति अधिक स्पष्ट नही है ।

६–रामचरित

यह पुस्तक भरतपुर के जिला पुस्तकालय से प्राप्त हुई है । जिस गुटका सं० १०३–१०७ मे भक्ति विनोद सकलित है, उसी मे भक्तिविनोद के पश्चात 'रामचरित' सकलित है । इसका क्रमाक भी १०६ ही है । अत. प्रतीत होता है कि सकलन कर्त्ता ने इस पुस्तक को 'भक्ति-विनोद' का ही अश मान लिया है, जबकि यह १२ छन्दो की स्वतन्त्र लघु रचना है । इस पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार होता है .—

"अथ श्री रामचरित वर्णनं लिख्यते

श्री रामचरित्र सुनौ चित लाई ।
भव तारन लीला सुखदाई ।
श्री अवधपुरी जहँ परम समाजा ।
राज करै श्री दशरथ राजा ।।

पुस्तक का अन्तिम अंश यह है —

"सुखदाइ गाइ अनंद दीने पुत्र मित्र समाज कौं ।
यौं नित अजोध्या मे विराजत अवतरे जन काज कौं ।
श्रीरामजू के चरित इहि विधि सेस गगापति रटैं ।
'सूरति' सुकवि सो सुनत गावत कोटि कलि-कलमप कटैं ।।१२।।

श्रीरामचरित सपूर्ण ।"

यह रचना 'भक्तिविनोद' की प्रति वाले बांसी कागज पर उसी लिपि मे लिखी गई है ।

७—श्रीकृष्णचरित

भरतपुर के जिला पुस्तकालय मे भक्तिविनोद वाले गुटका सख्या १०३–१०७ मे सख्या १०६ पर रामचरित के पश्चात इस रचना को सकलित किया गया हे । इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है —

"अथ श्रीकृष्णचरित लिख्यते ।

श्री कृष्णचरित्र सदा सुखदाई ।
जिहि गावत सुर-नर-मुनि राई ।।
मथुरा प्रगटे पूरन कामा ।
श्री वसुदेव-देवकी-धामा ।।१।।"

पुस्तक का अन्त इस प्रकार हुआ है—

"ऐसे नित लीला श्रुति गावै ।
अरु ब्रह्मादिक पार न पावै ।
सदा सनातन रूप विराजै ।
लीला करत भक्त हित काज ।।११।।

लीला करत नित भक्त काजै परम अद्भुत साज सों ।
प्रभु नित्य वृंदावन विराजे जुगल रूप समाज सों ।
ए चरित सेस दिनेस श्री गनेस हिय अभिराम है ।
'सूरति' सुकवि श्री भागवत कौ ध्यान यह सुखधाम है ।।१२।।

श्रीकृष्णायनमः । इति श्री भक्तिविनोद राम-कृष्ण-चरित्र सूरति : वि कृतं सम्पूर्ण । शुभमस्तु । श्री ।।"

इस प्रकार इस प्रति मे रचना-काल या लिपि–काल का उल्लेख नही है ।

८–रास-लीला

(क) **प्रथम प्रति**—यह पुस्तक अनूप सस्कृत पुस्तकालय बीकानेर मे सुरक्षित है । वहाँ इसकी दो प्रतियाँ उपलब्ध है । प्रथम प्रति का क्रमाक १२१ है । इस प्रति में दो पत्र है । आरम्भ का एक पत्र नही है, अत यह प्रति अपूर्ण है ।

(ख) **द्वितीय प्रति**—यह प्रति भी उक्त पुस्तकालय मे ही क्रमाङ्क १२२ पर संकलित है । इस प्रति मे तीन पत्र है । यह प्रति १८३४ वि० की प्रतिलिपि है, जैसा कि इसके साथ सकलित 'दानलीला' के अन्त की पुष्पिका से स्पष्ट है । कागज बाँसी तथा लिपि प्राचीन है, जिनसे इसकी प्रामाणिकता स्पष्ट है ।

९–दानलीला

(क) **प्रथम प्रति**—'दानलीला' की यह प्रति अनूप सस्कृत पुस्तकालय बीकानेर मे 'रासलीला' की प्रति स० १२१ के साथ सकलित है । इसमे २ पत्र है । अन्त का एक पृष्ट नही है । अत· यह खण्डित प्रति है ।

(ख) यह प्रति भी उक्त पुस्तकालय मे ही 'रासलीला' की प्रति संख्या १२२ के साथ संकलित है । इसमे ३ पृष्ठ है । अन्त मे यह पुष्पिका इस प्रकार है.—

"इति श्री दानलीला मिश्र सूरति जी कृत सम्पूर्ण संवत १८३४ फागुन सुदी १३ बुधवार ।"

इस पुष्पिका से इसका लिपिकाल १८३४ सिद्ध है ।

१०—अलंकारमाला

इस पुस्तक की ५ प्रतियाँ प्राप्त हुई है, जिनका परिचय इस प्रकार है.—

(क) **उदयपुर की प्रति**—यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में उपलब्ध है । इसका ग्रथाङ्क ६९२ है । पत्रो का आकार

१६ से० मी० × १४ से० मी० है। रचना का आरम्भ पत्र ५ से हुआ है और पत्र ४८ ब पर समाप्त हुई है। प्रति अपूर्ण है। जिस गुटका मे यह सकलित है, उसमे पत्र ७१ पर अन्य रचना के साथ लिपि-काल १८८५ वि० का उल्लेख है। अतः अनुमानतः १८८५ वि० मे ही यह प्रति भी लिखी गई होगी। इस प्रति का कागज देशी तथा हस्तलिपि प्राचीन है। प्रति का आरम्भ इस प्रकार है —

"श्री गणेशायनम । अथ अलकारमाला दूहा लिखते ।
तड घन वपु घन तड वसन, भाल लाल पख मोर ।
व्रज जीवन सूरत सुखद, जय जय जुगल किसोर ॥१॥
अलकार कवितान के, सबन समभिबे हेत ।
रच्यौ ग्रन्थ 'सूरत' सु यह, लच्छन लच्छ निकेत ॥२॥"

और निम्नाकित अश के साथ प्रति अपूर्ण छोड दी गई है—
"श्रोती उपमानोपमेय लुप्ता मे व्यतिरेक
लखी डसत सी भय हरन
पै अद्भुत अँग लीन ।

प्रश्न—यहाँ 'डसन सी' यह धरम साथ वाचक है याते श्रोती कही । × ×

तहाँ उत्तर—इहाँ डसन केवल धरम है × × ×
धर्म चलन यह नहि कहि सकियै ॥
याते दूहा प्रस्ताविक ।"

इसके पश्चात अपभ्रंश और डिंगल के छन्द है, जो अन्य कवियो के हैं ।

(ख) जोधपुर की प्रति—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर मे यह प्रति ग्रन्थाङ्क १८७१७ पर उपलब्ध है । यह प्रति खंडित है, क्योकि इसके ४ पत्र प्राप्त नही है । पुष्पिका से इसका लिपि-काल १८६० वि० सिद्ध होता है ।

(ग) बीकानेर की प्रथम प्रति—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की बीकानेर शाखा मे अलकारमाला की तीन प्रतियाँ उपलब्ध है । प्रथम प्रति का ग्रन्थाङ्क ६६ है । कागज देशी तथा लिपि स्पष्ट है । इसका आरम्भ इस प्रकार हुआ है .—

"।। अथ अलकारमाला लिखते ।

तडि घन वपु घन तडि बसन
भाल लाल पख मोर।
ब्रज जीवन सूरत सुखद
जय जय जुगल किसोर ।।१।।
अलकार कवितान के
सबन समझबे हेत।
रच्यौ ग्रन्थ सूरत सु यह
लक्षन लक्ष्य निकेत ।।२।।"

प्रति का अन्तिम अश इस प्रकार है :—

"अलकार माला करी, सूरत मन सुखदाय।
वरनत चूक परै लखौ, लीजो सुकवि बनाय ।।
सूरत मिश्र कनौजिया, नगर आगरै वास।
रच्यौ ग्रन्थ तिह भूषननि, वलित विवेक विलास ।।
संवत सत्रह सै वरष, छासठ सांवन मास।
सुर गुर सुद एकादशी, कीनौ ग्रन्थ प्रकास ।।
अलंकार माला जु यह, पढै गुनै चितलाय।
बुद्धि सभा परवीनता, ताहि देहि हरिराय ।।
इति श्री अलकारमाला सम्पूर्ण। श्री। श्रीरस्तु ।।"

इस प्रकार इस प्रति मे रचना-काल तो उल्लिखित है, किन्तु लिपि-काल नही दिया गया है।

(घ) इलाहाबाद की प्रति—हिन्दी साहित्य सम्मेलन इलाहाबाद के संग्रहालय मे भी 'अलकारमाला' की एक प्रति है, जिसकी सग्रह-सख्या १४५८–२५७३ है। यह प्रति अपूर्ण है। इसमें केवल १७ पृष्ठ है। लिपि भी अधिक स्पष्ट नही है। लिपि-काल का इसमे भी उल्लेख नही है।

११. काव्य-सिद्धान्त

इस ग्रन्थ की निम्नाकित प्रतियाँ उपलब्ध है :—

(क) उदयपुर की प्रथम प्रति

यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में सुरक्षित है। इसका ग्रन्थाङ्क ६१२-२७२१ है। इस प्रति मे ३१ से ४७ तक कुल

१७ पत्र हैं। पत्र का आकार १६×१६.५ से. मी है। कागज देशी तथा लिपि सुवाच्य है। प्रति का आरंभ इस प्रकार हुआ है :—

"श्री गणेशायनम । श्री गणेशायनम' ॥

दूहा

श्री वृन्दावन मधि लसै, नित वय नवलकिसोर।
गौर स्याम अभिराम तन, दंपति सपति मोर।"

अत का अश निम्नाकित है —

"सूरति सुकवि सुनौ यह,
फुरै जु कविता रीति।
तौ प्रभु गुन ही वरनियै,
जौ हिय सब सुख प्रीति ॥५८॥

इति श्री सूरत मिश्र कृत काव्य-सिद्धान्त सम्पूर्णन् ॥ श्रीरस्तु ॥
पठनार्थ दधवाडिया कवर जी श्री सावलदास जी।

जुठियारा रामदान जी लालस री पुस्तक सूं वापजी श्री कनीराम जी लपी तिण ख्यात सु ये ग्रन्थ लिख्या गया।"

इस प्रकार यह ग्रन्थ जूठिया ग्राम के कनीराम की ख्यात (पुस्तक) से लिखा गया है। लिपि-काल का उल्लेख नही है। दधिवाड़िया श्यामलदास के पढने के लिए यह प्रति लिखी गई थी। श्यामलदास दधिवाडिया का निर्वाण १६३५ वि० मे हुआ। अत यह प्रति १६३५ वि० से कुछ समय पूर्व ही लिखी गई होगी।

(ख) उदयपुर की द्वितीय प्रति

यह प्रति राजस्थान विद्यापीठ के साहित्य-संस्थान मे क्रमाङ्क १७६ पर सग्रहीत है। इसका लिपि-काल १६३२ वि० है। इसमे सख्या २७ से ४० तक १४ पत्र है। यह प्रति अशुद्ध तथा खण्डित है। कागज भी अधिक पुराना नही है। आरभ इस प्रकार हुआ है —
"श्री गणेशायनम अथ सुरत मीस्र क्रत. काव्य सदात लीखते दुहाः ॥"

(ग) उदयपुर की तृतीय प्रति

यह प्रति भी उक्त सस्थान मे क्रमाङ्क ३६७ पर सग्रहीत है। इसका लिपि-काल १६१३ वि० है। यह प्रति अधिक स्पष्ट है तथा कागज भी पुराना है। इसमें १६ पत्र है।

(घ) जोधपुर की प्रथम प्रति

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर में क्रमाङ्क ११२९ पर यह प्रति सुरक्षित है। यह प्रति अपूर्ण है। इसमे केवल ६ पत्र है। लिपिकाल का उल्लेख नही है, किन्तु कागज आदि के आधार पर अनुमान है कि यह प्रति १९वी शताब्दी विक्रमी मे लिखी गई होगी।

(ङ) जोधपुर की द्वितीय प्रति

यह प्रति भी जोधपुर के उक्त प्रतिष्ठान मे ही सुरक्षित है। इसका क्रमाङ्क २२६३ है। इसमें १६ पत्र है। यह प्रति कही-कही अस्पष्ट है। इसका लिपिकाल १९२५ वि० है। इसकी प्रतिलिपि कृष्णगढ मे की गई थी। इसमें रचना-काल १७९८ वि० उल्लिखित है।

इन प्रतियों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रतियाँ भी मिलती हैं, किन्तु वे विशेष उल्लेखनीय नही है।

१२—छंदसार पिंगल

इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ प्राप्त हुई है, जिनका विवरण इस प्रकार है—

(क) उदयपुर की प्रति

यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर में उपलब्ध है। इसकी ग्रन्थ-सख्या ६११ (२७२० – २) है। गुटका मे इसकी पत्र-संख्या १ से ३१ तक है। कागज देशी और पुराना है तथा आकार १९ × १६·५ से० मी० है। इस प्रति का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"श्री सरस्वत्यैनम । श्री गणेशायनमः। अथ छन्दसार पिगल सूरति मिश्र कृत लिख्यते।

सोरठा—कृष्णचरण नित आन,
कहौ सुमति पिगल कछू।
जिहते छंदह जांन,
प्रभु गुन ता महि बरनिये ।।१।।"

अन्तिम अश इस प्रकार है—

"बु[illegible] करिहि तौ, छन्द बन्ध चित लाय।
सब छाँडि कै, नन्दनन्दन गुन [illegible]।
कृत ग्रन्थ छन्दसार सम्पूरण:

(ख) जोधपुर की प्रति

यह प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के जोधपुर संग्रहालय में ग्रन्थाङ्क ३५६५१ पर सग्रहीत है। लिपिकाल का इसमे भी उल्लेख नही है। उदयपुर की प्रति इसकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट है।

१३—कामधेनु-कवित्त

इस ग्रन्थ की एक प्रति करहल-निवासी पण्डित बाबूराम तिवारी के निजी सग्रह मे उपलब्ध हुई है। पाण्डुलिपि मे ६.५"×५.५" के आकार के ६ पत्र है। कागज देशी तथा लिपि प्राचीन है। ग्रन्थ का आरम्भ इस प्रकार हुआ है—

"श्री गणेशायनम.। श्री पिंगलायनम अथ कामधेनु कवित्त लिख्यते।

धन वपु तडि पटु कमल दृग,
सीस चन्द्रिका मोर।
लाल लाल बनमाल उर,
जय जय नन्दकिसोर ।।

अन्त मे यह पुष्पिका दी गई है—

"इति श्री सूरति मिश्र विरचितं कामधेनु कवित्त समाप्तं। लिखित इन्द्रमणिना। श्री श्री श्री।"

इस पुष्पिका मे लिपिकर्त्ता ने अपना नाम तो दिया है किन्तु लिपिकाल का उल्लेख नही है।

१४—प्रबोधचन्द्रोदय

इस ग्रन्थ की भी मुझे दो प्रतियाँ प्राप्त हुई है। यहाँ दोनो का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है—

(क) शाहपुरा की प्रति

यह प्रति शाहपुरा (राजस्थान) के श्री उम्मेद सार्वजनिक पुस्तकालय मे मिली है। इस पुस्तकालय मे अनेक अज्ञात ग्रन्थों का राजकीय सग्रहालय है। प्रस्तुत प्रति बस्ता सख्या ३३ मे ग्रन्थाङ्क १७५ पर संग्रहीत है। कागज तथा स्याही से प्रति उन्नीसवी शताब्दी विक्रमी मे लिखित प्रतीत होती है। इसका आरम्भिक अंश इस प्रकार है—

"श्री गणेशायनम। अथ प्रबोधचन्द्रोदय भाषा लिख्यते।

दोहा—गुण गणेश गावौ गुणी, सब विधि सुख सरसाइ।
बाढै बुद्धि विवेक बल, महामोह मिटि जाइ ।।१।।

इस प्रति का अन्त इन पक्तियो से हुआ है—

"जो कोउ याहि सुनै रु सुनावै, सोउ परम गति पावै।
'सूरति' सुकवि धन्य वह जग में, किहु विधि हरिगुन गावै ॥२६३॥"

इति श्री सूरत सुकवि विरचित प्रबोधचन्द्रोदय नाटक भाषा सम्पूर्णम् ॥"

(ख) करहल की प्रति

यह प्रति करहल (मैनपुरी) के निवासी स्वर्गीय पण्डित बाबूराम तिवारी के घर से उपलब्ध हुई है। इसमे कुल १७ पत्र है। कागज देशी तथा पुराना है। इसका आरम्भ एव अन्त 'क' प्रति के समान ही है। इस पाण्डुलिपि की पुष्पिका मे लिपि-काल या रचना-काल का उल्लेख नही है। पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति सूरति मिश्र विरचित प्रबोधचन्द्रोदय भाषा सम्पूर्णम् शुभम्।"

१५—अमरचन्द्रिका

इसकी निम्नाकित प्रतियाँ उपलब्ध हुई है—

(क) उदयपुर वाली संस्थान की प्रति

राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर के साहित्य-सस्थान मे अमरचन्द्रिका की एक प्रति उपलब्ध हुई है। इसका ग्रन्थाङ्क ३७३ है। यह प्रति अपूर्ण है तथा अधिक स्पष्ट भी नही है।

(ख) उदयपुर की प्रतिष्ठान वाली प्रति

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उदयपुर सग्रहालय मे अमरचन्द्रिका की एक पूर्ण प्रति उपलब्ध है। इसका ग्रन्थाङ्क २६१ (२०८२) है। इसमे २५ × २६ से० मी० आकार के २०६ पत्र है। कागज देशी तथा लिपि पुरानी है। इसके आरम्भ का अश इस प्रकार है—

"सिद्ध श्री - महागणपतयेनम.। श्री गोपीबल्लभायनम। अथ अमर-चन्द्रिका लिख्यते।

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै, स्याम हरित दुति होइ ॥१॥
टीका—प्रथम मगलाचरन इहि, कवि की बिनती जाँनि।
प्रगट तु अपनी अधमता, अधिकाई ध्वनि आनि ॥"

अन्त मे यह पुष्पिका दी गई है—

"इति श्री अमरचन्द्रिकाया अमर सूरत प्रश्नोत्तरे शान्त रस वर्णन नाम पचमो विलास सम्पूर्णम् । सवत् १८११ वर्षे शाके १६७६ रा कारतिग विदि १४ सोम वासरे ।। लिखायतं वावा जी श्री १०८ खुमाणसिंह जी चिरायुरस्तु । वाचनार्थे ।। लिखत्न मेदपाटदेशे उदैपुर नग्रे ।। सहा सिवरूप अग्रवालस्य लेखनीया ।। श्रीरस्तु ।। अज्ञान दोपान्मतिविभ्रमाद्वायत्किचित न्यून लिखित मयात्र ।। तत्सर्वमार्यै परिसोधनीय ।। दोपो न कार्यो खलु लेखकस्य ।।१।। श्रीरस्तु कल्याणमस्तु ।। श्री श्री श्री श्री ।।"

इस पुष्पिका से स्पष्ट है कि यह प्रति सवत् १८११ वि० मे उदयपुर मे शिवरूप शाह नामक किसी व्यक्ति ने वावा खुमाणसिंह के पठनार्थ लिखी थी ।

(ग) जोधपुर की प्रति

अमरचन्द्रिका की एक प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के जोधपुर सग्रहालय मे सुरक्षित है, जिसका ग्रन्थाङ्क ३६६७४ है । इस प्रति मे लिपि-काल का उल्लेख नही है । अनुमान है कि यह प्रति भी उन्नीसवी शताब्दी मे ही लिखी गई होगी, किन्तु उदयपुर की प्रति के पूर्व लिखी गई प्रतीत नही होती ।

१६—कविप्रिया टीका

इस ग्रन्थ की केवल एक प्रति उपलब्ध हुई है । जो दिल्ली विश्व-विद्यालय के हिन्दी-विभाग मे प्राध्यापक डॉ० रमानाथ त्रिपाठी के पास है । उन्हे यह प्रति उत्तरप्रदेश के इटावा, बाँदा आदि जिलो मे खोज कार्य करते समय प्राप्त हुई थी । इस प्रति मे कुल ५६ पत्र है और आकार $33\frac{1}{2} \times 16\frac{1}{2}$ से० मी० है । कागज देशी तथा लिपि पुरानी है, किन्तु सुवाच्य है । इसके आरम्भ और अन्त के अश इस प्रकार हैं—

आरम्भ—

"श्री गणेशायनम. । अथ सटीक कविप्रिया मिश्र सूरत कृत ।

सोरठा--गरुडपाल गिरिपाल,
गौरि गिरा गण ग्रहण गुह ।
ए जेहि रूप रसाल,
बंदौ पग तेहि जुगल के ।।१।।'

अन्त—

"संवत् १८४६ शाके १७१४ ।। माघ कृष्णे ४ भौमवासरे लिखितं ।। इदं पुस्तकं ।। इन्दुमणिना ।। समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।। शुभमस्तु । शुभं भूयात ।। श्रीरामोजयतितरां ।"

इस पुष्पिका से ग्रन्थ का लिपिकाल १८४६ वि० प्रकट होता है, किन्तु रचना-काल का उल्लेख नहीं है। उपर्युक्त पुष्पिका के अनुसार यह प्रति इन्दुमणि नामक किसी व्यक्ति ने लिखी थी।

सूरति मिश्र के नाम से प्रसिद्ध अन्य ग्रन्थ

खोज विवरणों में निम्नांकित ग्रन्थों का रचयिता श्री सूरति मिश्र को बताया गया है:—

१. शृंगारसार
२. सरसरस या रससरस
३. बैतालपचीसी
४. भक्तमाल
५. श्रीनाथविलास
६. रसरत्नमाला

इनमें से केवल शृंगारसार, सरसरस, बैतालपचीसी एवं रसरत्नमाला की प्रतियों के विवरण खोज-विवरणों में मिलते हैं, शेष दो पुस्तकों का उल्लेख शृंगार-सार के उद्धरणों में मिलता है। हमें इनमें से केवल शृंगारसार एवं सरसरस (रससरस) की हस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं। अतः पहले इनका परिचय प्रस्तुत करके फिर अन्य कृतियों पर विचार करेंगे।

१. शृंगारसार

सूरति मिश्र की रचना के रूप में इसकी केवल एक प्रति आगरा निवासी श्री रामचन्द्र सेनी के घर उपलब्ध हुई है। खोज-विवरण में भी इसी प्रति का उल्लेख है।[1] इस प्रति में ११ × ७ इंच आकार के केवल ५४ पत्र हैं। ग्रन्थ का आरम्भ ·

---

१. सभा का खो … ५, वर्ष १९३२-३४ ई०, पृ
पृष्ठ २३८, … ०।

"श्रीगणेशायनमः । अथ शृंगारसार लिख्यते ।

रिपुपत्नी नायिका—

सुमरित ही हरि छिनकु ही, दीने वसन बढाइ ।
सुनि प्रभाव रिपु की तरुनि, सबै गईं मुरझाइ ।।

सपत्नी परनारि—

मन भावन आवन कह्यौ, सावन लागत धाम ।
विरमायौ वालम सखी, काहू बैरिन बाम ।।"

ग्रन्थ के अन्त मे रचित ग्रन्थो के नामो एव रचना-काल का उल्लेख करके यह पुष्पिका दी गई है —

"इति श्री सूरति मिश्र विरचिते सिंगारसारे विप्रलभ वर्णन नाम सप्तमो विलास सम्पूर्ण । शुभ ।।"

इस पुष्पिका को प्रमाण मान कर ही खोज-विवरण मे 'शृंगारसार' को सूरति मिश्र द्वारा रचित स्वतन्त्र ग्रन्थ माना गया है । किन्तु प्रति का आदि से अन्त तक अवलोकन करने एव अन्तिम परिचय पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'शृंगारसार' कवि की कोई स्वतन्त्र कृति नही है । २४ पत्रो की इस लघु प्रति मे किसी कवि ने अपनी रचनाओ के साथ सूरति मिश्र की कुछ कृतियो के शृंगार-विषयक अशों एव 'रसरत्न' का भी सकलन कर दिया है । उसने ग्रन्थ परिचय आदि के सभी अ श अपनी ओर से जोडे है ।

इस पुस्तक का विषय-वर्णन क्रमानुसार इस प्रकार है—

१ अनुनायिका, देश भेद, यौवनाभिसारिका, अन्य स्नेह दुखिता एव अष्टनायिकादि वर्णन ।

२ नायक के लक्षण, अनुकूल लक्षण, उदाहरण, शठ-धृष्ट-लक्षण, दोनो के उदाहरण ।

३ भाव वर्णन-विभाव का लक्षण, आलम्बन, उद्दीपन, उद्दीपन के सदर्भ मे प्रकृति का वर्णन, यथा चन्दोदय, षटऋतु, बसत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त शिशिर ।

उद्दीपन, स्थायी भाव, सात्विक भाव, स्तम्भ, स्वेद, रोमाच, स्वरभंग, कम्प, विवर्ण, हेला–हाव, लीला-हाव, ललित हाव, मद विभ्रम हाव, विहित हाव, विलास हाव, कलकिंचित विच्छित, विब्वोक, नोढावित, कुट्टमित, वोधक, अन्यदपि एव चेष्टा का वर्णन ।

४. सखी वर्णन–रूप-दर्शन, नायक-दूती, शिक्षा, विनय, आदि के उदाहरण, मान, दूती वर्णन, नाइन, मालिन एवं तम्बोलिन के वचन, दूती-भेद (उत्तम मध्यम, अधम) एवं सखी वर्णन ।

५. शृंगार-वर्णन–अनुत्पन्न विप्रलभ, विप्रलभान्तर सयोग, मिलन-लक्षण, दर्शन के भेद और उदाहरण, स्वय दूत-लक्षण और उदाहरण, अनुराग, अवहास-हास, नायक के प्रति नायिका का परिहास, दम्पत्ति से सखी का परिहास, अष्ट रति के भेद, विप्रलभ शृंगार, पूर्वानुराग, विरह, श्रवण और दर्शन से पूर्वानुराग दश दशा, चिन्ता, गुण-कथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता, मान-भेद, ईर्ष्या का उदाहरण, प्रणय जन्य मध्यम मान, मानोपाय–साम, दान, भेद, प्रणति, उपेक्षा, प्रसग-विध्वस आदि । प्रवास विप्रलभ के लक्षण और उदाहरण, नायिका-विरह, कथन, नायक का विरह ।

६. विरह के प्रसंग मे बारह मासा भी दिया गया है ।

७. नायक-नायिका का पत्र-व्यवहार तथा करुण-विरह, वियोग-निर्णय, कार्यान्तर वियोगाभ्यास, देशान्तर-वियोगाभ्यास, पूर्ण श्रंगार का उदाहरण ।

प्रति के अन्त मे सूरति मिश्र एवं उनकी कृतियो का परिचय इस प्रकार दिया गया हैं :—

"वरनी रस शृगार की संछेपहि कछु रीति ।
लखौ चूक सो बनाइयौ, कवि कोविद करि प्रीति ।
नगर आगरौ बसत सो, बाँकी ब्रज की छाँह ।
कालिन्दी कलमष हरनि, सदा बहति जा माँह ।।
श्रुति पुरान कविता सरस, जप तप, नृत्य सुगान ।
जहँ चरचा निसि दिन यहै, अरचा श्री भगवान ।।
भगवत पारायन भये, तहाँ सकल सुख धाम ।
विप्र-कन्त ब्रज कुल कलस, मिश्र सिघमनि नाम ।
तिनके सुत सूरति सुकवि, कीने ग्रन्थ अनेक ।
परमानंद वर्णन विषै, परी अधकसी टेक ।।
माथे पर राजति सदा, श्रीमद गुरु गनेश ।
भक्ति काव्य की रति लही, लहि जिनके उपदेश ।।

प्रथम कियौ सत कवित में, इक श्रीनाथविलास ।
इक ही तुक पर तीन सौ, प्रास नवीन प्रकास ।
श्री भागवत पुरान के, तहँ श्री कृष्ण चरित्र ।
वरने गोवर्द्धन धरन, लीला लागि विचित्र ।।

भक्ति विनोद सुदीनता, प्रभु सो शिक्षा चित्र ।
देव, तीर्थ, अरु पर्व के, समै-समै सु कवित्त ।।

बहुरि भक्तमाला कही, भक्तिन के जस-नाम ।
श्री वल्लभआचार्य के, सेवक के गुन धाम ।।

कामधेनु इक कवित मे, कढत सतवरन छद ।
केवल प्रभु के नाम तहँ, धरे करन आनद ।।

इक नख सिख माधुर्य है, परम मधुरता लीन ।
सुनत पढत जिहि होत है, पावन परम प्रवीन ।।

छदसार इक ग्रन्थ है, छद रीति सब आहि ।
उदाहरन मे प्रभु जसै, यों पवित्र विधि ताहि ।।

कीनों कवि सिद्धान्त इक, कवित रीति कौ देखि ।
अलंकारमाला विषै, अलकार सब लेखि ।।

इक रसरत्न कीन्हौ वहुरि, चौदह कवित प्रमान ।
ग्यारह सै बावन तहाँ, नाइकानि कौ ज्ञान ।।

इह इक सार सिगार तहँ, उदाहरण रस रीति ।
चारि ग्रन्थ ये लोक-हित, रचे धारि हिय प्रीति ।।

कहा कहौ ये ग्रन्थ हू, प्रभु जस अंकित मानि ।
ज्यौ व्यंजन बहु लवन तन, पाइ स्वादु मन मानि ।।

जिन ग्रन्थन महँ कवित में, आवै हरि कौ नाम ।
सो वहु शुभ 'सूरति' सुकवि प्रति पवित्र सुख भाम ।।

इस विवरण में दिए गए तथ्य सूरति मिश्र की अन्य रचनाओ मे प्राप्त तथ्यो से मेल नही खाते । प्रथमत सूरति मिश्र केवल आगरा ही नहीं रहे थे, अन्यत्र राजाओं के दरबारो मे भी उनका जीवन व्यतीत हुआ था । द्वितीय बात यह कि वे केवल कृष्ण की ही भक्ति नही करते थे, अन्य देवी-देवताओं

की भक्ति से सम्बन्धित रचनाएँ भी भक्ति-विनोद तथा अन्य पुस्तकों मे मिलती है। तीसरी महत्व पूर्ण बात यह है कि सूरति मिश्र की रचनाओं का जो काल-क्रम इस विवरण मे दिया गया है वह सत्य नही है। शृ गार की रचना का समय प्रति मे इस प्रकार उल्लिखित है।

"संवत सत्रह सै तहाँ वर्ष पचासी जानि।
भयो ग्रन्थ गुरु पुष्य में, सित असाढ़, अय मानि ।।"

सूरति मिश्र कृत काव्य-सिद्धान्त (१७९८) रस रत्न टीका (१८००) आदि कृतियाँ १७८५ वि० के पश्चात् लिखी गई थी। भक्तिविनोद मे 'वर्ष-गाँठ' से आगे सकलित छंद भी १७८५ के पश्चात् लिखे गए थे। अतः उत्तर-वर्ती रचनाओ का उल्लेख भी 'शृ गार-सार' को एक अप्रमाणिक रचना सिद्ध करता है। कृति-परिचय मे यह सकेत भी है कि सूरति मिश्र ने भक्ति-विषयक रचनाओ के पश्चात् चार ग्रन्थ लोक-हितार्थ लिखे। उन चार ग्रन्थो मे शृ गार-सार भी सम्मिलित किया है। अत वह भक्ति-विनोद का उत्तरवर्ती काव्य होना चाहिए, जबकि परिचय मे ही उसका रचना-काल १७८५ वि० बताया गया है। साथ ही, लोक-हितार्थ जो ग्रन्थ गिनाए गए है, वे है—छदसार, काव्य, सिद्धान्त, अलकारमाला, रसरत्न और शृंगार-सार। ये चार बताए गए है, जबकि पाँच होते है।

इससे भी सिद्ध है कि शृंगार-सार को छोड कर शेप चार रीति-ग्रंथ ही सूरति मिश्र की रचनाएँ है और शृंगारसार नाम से जो रचना सूरति मिश्र कृत बताई जा रही है, वह अप्रमाणिक है। सभा के खोज-विवरण, संख्या १४ (सन् १९२९–३१) मे क्रम सख्या २४० पर भी एक "शृंगारसार" का इस प्रकार उल्लेख है —

"२४०—शृंगारसार—रचयिता. मुरलीधर मिश्र। कागज—बाँसी, पत्र ४, आकार ७×५ इञ्च। पंक्ति १८। परिणाम् ६३। खण्डित। पद्य। प्राप्ति बहुरी चिरंजीलाल जी, भैरो बाजार, आगरा।

आदि—भाव लछनं।
रस उपजत है भाव ते
भाव सु पाँच प्रकार।
भनि विभाव अनुभाव अरु,
सात्विक थिर संचार।

रस अनुकूल है विकार मन वहै भाव,
अनुभाव जितने विकार मन जानिए ।

विभाव विशेषता है आवन की सौ है भाँति,
आली इक वन दूजो उद्दीपन मानियै ।।

सात्विक है आठ स्तम्भ स्वेद रोम स्वरभग वेपथु,
विवर्ण आँसू प्रलय वखानियै ।

तेतीस है सचारी जो स्थाई रति पुष्ट करै
तब ही सिगार रस पूरौ पहिचानिये ।।

अन्त—

दोहा— ऐ हो औरी हाव है, दंपति के संयोग ।
इनकौ कोई कविन नै, वरन्यौ नारि वियोग ।।४२।।

यह सिगार रस सार की पोथी रची विचारि ।
भूल्यौ हौउ जहाँ कहूँ, लीजै सुकवि सुधारि ।।
इति श्री मुरलीवर मिश्र विरचित शृंगारसार ७४।।

शुभम् भूयाम् ।"[1]

इस विवरण को देखने तथा विषय की ओर ध्यान देने से प्रतीत होता है कि "शृंगारसार" नामक कृति का मूल रूप मुरलीधर मिश्र की ही रचना है तथा उसी मे वाद मे सूरति मिश्र की कुछ रचनाओ के अंश एव रसरत्न जोड़ दिया गया है तथा अन्त मे सूरति मिश्र का परिचय भी दे दिया गया है । मिश्र होने के कारण मुरलीधर का सूरति मिश्र वशीय होना भी सम्भव है और उस स्थिति मे शृंगार सार' मे सूरति मिश्र की रचनाओ का संग्रह तथा परिचय आदि भी स्वाभाविक ही कहा जाएगा ।

२ सरसरस

इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के उदयपुर सग्रहालय मे सुरक्षित हैं । ग्रन्थ सख्या ३८४ सम्वत् १८१६ वि० की प्रतिलिपि

---

१. देखिये, खोज-विवरण, भाग—१४, पृ० ४४६-४५० ।

है तथा ग्रन्थ सख्या ४१७ सम्वत् १८०० की प्रतिलिपि है। दोनो में आरम्भ की पंक्तियाँ इस प्रकार है—

"श्री गणेशायनम. । श्री सरस्वत्यैनमः । अथ ग्रन्थ 'रस-सरस' लिख्यते ।

दोहा— विघन विदारन बिरदवर, बारनवदन बिकास ।
बर देबहु बाढै विरुद, बानी बुद्धि-विलास ।।१।।

छप्पय— × × ×

सन्त सुद्ध रूप सुधि बिरद करि बिनयदास श्रवननि धरौ ।
'रस-सरस' ग्रन्थ चाहत रच्यौ, नवरस मय शिव शिव करौ ।।२।।

दोहा— यह जु सरस रस ग्रंथ तहँ, रचना रची नवीन ।
रस नायक अरु नायका, बहुरि किया जु प्रबीन[1] ।।३।।"

इस प्रकार ग्रथ के आरम्भ में सूरति मिश्र का किसी भी रूप मे उल्लेख नही है। छप्पय की अन्तिम पक्ति मे 'शिव' शब्द का दो बार प्रयोग है जिनमे से एक प्रयोग रचनाकार के नाम के रूप मे हुआ प्रतीत होता है। इससे आरम्भ मे ही सकेत मिलता है कि इस ग्रन्थ का रचयिता "शिव" नामक कोई कवि है। आगे बढने पर हम देखते है कि प्रत्येक विलास (अध्याय) के समाप्त होने की सूचना देते समय स्पष्टत "राय शिवदास" का उल्लेख किया गया है।

यथा

"इति श्री राय शिवदास विरचिते सरस-रस ग्रन्थे रस निरूपन नाइक वर्नन नाम प्रथमो विलास।"

ग्रन्थान्त मे जो पुष्पिका है, उससे भी यही सिद्ध है कि इस ग्रन्थ की रचना राय शिवदास ने की थी। पुष्पिका इस प्रकार है—

"इति श्री राय शिवदास विरचिते सरस-रस ग्रन्थे रस निरूपणो नाम अष्टमो विलास सम्पूरन समापत ।।"[2]

---

१. देखिये हस्तलिखित प्रति, ग्रन्थाङ्क ३८४ एव ४१७, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर।

२. देखिये, हस्तलिखित प्रति, ग्रन्थाङ्क ३८४ एवं ४१७ के अन्तिम पृष्ठ

इसके अनन्तर लिपिकर्त्ता ने लिपि-काल आदि का उल्लेख किया है।

पुष्पिका से पूर्व कवि ने ग्रन्थ-रचना के कारण पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि—

"कारन कहत जु ग्रन्थ को, सौ सुनिये चितलाइ।
जिहि विधि भेद नवीन ए, कहति सुमति उपजाइ ॥११६॥

× × ×

एक समै मधि आगरै, कवि समान कौ जोग।
मिलौ आइ सुखदाइ हिय, जिनकी कविता जोग ॥१२२॥

तव सव ही मिलि मत्र यह, कियौ कविनु वहु जाँनि।
रचियै ग्रन्थ नवीन इक, नए भेद रस ठानि ॥१२३॥

जिहि विधि कवि मिलि कै कही, जथा जोग लहि रीति।
उनही मै जे समवै, कहे भेद जुत प्रीति ॥१२४॥

अपनी मति परमान सौ, कहे भेद विस्तारि।
लखौ जु या मैं नूनता, सो कवि लेहु सुधारि ॥१२५॥

कवि अनेक मति मै हुतै, पै मुख कवि परवीन।
जाके सम्मत सौ भयौ, पूरन ग्रन्थ नवीन ॥१२६॥

सूरतिराम सुकवि सरस, कान्यकुविज वहु जान।
वासी ताही नगर कौ, कविता जाहि प्रमान ॥१२७॥

केतक धरे सु ग्रन्थ मे, वर कवित्त कविराइ।
ताही सौ गम्भीरता, अरथ दरस दरसाइ ॥१२८॥"[१]

इन दोहो मे ग्रन्थ रचना का कारण स्पष्ट करते समय सूरति मिश्र के सहयोग-मात्र का उल्लेख किया गया है। वस्तुत मूल रचनाकार राय शिवदास है तथा उसने कवि-समाज मे एकत्र कवियो से विचार विमर्श किया है एव उनके जो छन्द उसे उपयोगी जान पडे है, वे ग्रन्थ मे सकलित कर दिये है। चूंकि पूर्वोक्त दोहो के अनुसार सूरति मिश्र के कुछ छदो को भी ग्रन्थ मे

१. रससरस की हस्तलिखित प्रति, ग्रन्थाङ्क ३८४ एवं ४१७ अस्टम उत्साह।

सम्मिलित किया गया है, इसीलिए खोज कर्त्ताओ को यह भ्रम हो गया है 'रस-सरस' या 'सरस-रस' नामक ग्रन्थ की रचना सूरति मिश्र ने की थी। दोनो हस्तलिखित प्रतियों को आदि से अन्त तक पढ कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यह ग्रन्थ सूरति मिश्र की रचना न होकर राय शिवदास की रचना है तथा इसमे सूरति मिश्र के कुछ छद सकलित है। इन दोनो प्रतियों के अतिरिक्त भरतपुर के राजकीय पुस्तकालय मे भी मुझे १८६५ वि० की एक प्रति मिली है और उससे भी पूर्वोक्त तथ्यों का ही समर्थन होता है।[1]

३—वैतालपचीसी

इस ग्रन्थ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ मुझे उपलब्ध हुई है, किन्तु उनको सूरति मिश्र की रचना नही कहा जा सकता। प्रथम प्रति इटावा नगर के ऊदी गाव में मिली है, जो खड़ी बोली मे है। दूसरी प्रति उदयपुर के प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान मे मिली है, जो राजस्थानी मे है। प्रथम प्रति की पुष्पिका मे सूरति मिश्र का उल्लेख अवश्य है, किन्तु समस्त रचना की भापा खड़ीवोली होने के कारण हम उसे सूरति मिश्र कृत नही मान सकते। दूसरी प्रति मे राजस्थानी के प्रयोग के साथ-साथ स्पष्टत रचनाकार के रूप मे राय शिवदास का उल्लेख है। इस प्रति के आदि तथा अन्त इस प्रकार है—

आदि—श्री रामजी। श्रीगणेशमंविकान्यांनमः ॥ अथ वैतालपचीसी लिख्यते। ग्रन्थरौकर्त्ता श्री गणेश सरस्वती है नमस्कारनैं ॥

सर्व लोकराविनोदरैअर्थैंग्रन्थकरै छै ॥ एकदक्षिण देश जठै महिला रोघनामइसौ नगर छै। इति श्री शिवदास विरचितायां बैताल पचविशत्यां प्रथमं कथानकं ॥ (पत्र १३७)

अन्त—

इति श्री शिवदास विरचितायाँ वैताल पच विशत्यां पंचविशतिम कथानकं ॥२५॥

श्री मदुदयपुरनगरे छत्रपतीराजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराणा श्री श्री जगतसिह विजयराज्ये भट्ट श्री नदरामस्याज्ञया लिखितमिद पुस्तकं लेखक उदैरामेण। संवत् १७९५ पोस-

१. देखिए, 'सरस-रस' की हस्तलिखित प्रति, राजकीय जिला पुस्तकालय भरतपुर, ग्रन्थाङ्क १४–क–३।

सुदि चतुर्दशी भृगुवासरे । श्रीरस्तु । कल्याणमस्तु । (पत्र १७५ अ)[1]

अत उक्त दोनो ही प्रतियाँ सूरति मिश्र कृत वैतालपचीसी की प्रतियाँ नही है।

खोज-विवरण मे जिन प्रतियो का उल्लेख है, उनकी भाषा भी खडी बोली है। यथा —ग्रन्थारम्भ—"अथ सूरति कवि कृत वैतालपचीसी लिख्यने। श्री गणेशायनम ॥ धारा नगरी मे एक राजा था। वहाँ का राजा गधर्वसेन। उसकी चार राणियाँ थी। उनसे ६ बेटे थे। ××"

ग्रन्थान्त—"इति श्री वैतालपचीसी सूरति कवि कृत सम्पूर्ण समाप्त लिपत मुनुवा पण्डित स० १८२३ वि० विषय राजा विक्रमादित्य और वैताल री २५ कहानियाँ।"[2]

इन उद्धरणो से स्पष्ट है कि खोजकर्त्ता ने ग्रन्थारम्भ और पुष्पिका के आधार पर इस ग्रन्थ को सूरति मिश्र कृत मान लिया है।

इसी विवरण मे ग्रन्थाङ्क ४७४ सी, ४७४ डी, ४७४ ई, ४७४ एफ, ४७४ जी, पर वैतालपचीसी की जिन प्रतियो की सूचना है, उनके परिचय नही दिए गए है, किन्तु उनकी रचना भी खडी बोली मे होने का उल्लेख है। अत. इन सभी हस्तलिखित प्रतियो के रूप मे उपलब्ध 'वैतालपचीसी' सूरति मिश्र की रचना नही मानी जा सकती।

ऐसी हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर ही वैतालपचीसी का लिथो अक्षरो मे कतिपय स्थानो से मुद्रण भी हुआ था और उन सब मुद्रित प्रतियो मे यही उल्लेख मिलता है कि वैतालपचीसी के रचयिता सूरति मिश्र थे।[3] खोज विवरण मे कुछ स्थलो पर यह सकेत मिलता है कि सूरति मिश्र ने वैताल-पचीसी का सस्कृत से ब्रजभाषा मे अनुवाद किया था और उसी को लल्लूलाल

---

१ देखिए, वैतालपचीसी, हस्तलिखित प्रति, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, उदयपुर, ग्रन्थाङ्क ४२२।

२. सभा का १३ वाँ खोज-विवरण, १९२६–२८, ग्रन्थाङ्क ४७४ बी, पृष्ठ ६९९–७००।

३. देखिये, वैतालपचीसी के लिथो–मुद्रित निम्नाकित संस्करण—कलकत्ता–१८५२ ई०, बम्बई (गणपति कृष्ण जी प्रेस) १८५५ ई०, बनारस (हरनारायण चौबे छापा खाना) १८५६ आदि।

ने खड़ी वोली में रूपान्तरित किया। संभवत. हस्तलिखित तथा लिथो मुद्रित रूप मे वैतालपचीसी की जो प्रतियाँ सूरति मिश्र कृत वताई गई है, वे लल्लूलाल द्वारा किये गये उस रूपान्तर की ही प्रतियाँ है, जिसे खोजकर्ताओं ने सूरति मिश्र कृत इसलिए मान लिया है क्योकि मूलतः संस्कृत से व्रजभाषा हिन्दी मे सूरति मिश्र ने ही अनुवाद किया था। परन्तु आज की स्थिति यह है कि 'वैतालपचीसी' का वह अनुवाद अव उपलब्ध नही है, जो सूरति मिश्र ने व्रजभाषा मे किया था तथा जो प्रतियाँ हस्तलिखित या मुद्रित रूप में उपलब्ध है, वे सूरति मिश्र कृत नही है।

४—रसरत्नमाला अथा अन्य ग्रन्थ

'रसरत्नमाला' या 'रसरत्नाकर' नामो से जिन हस्तलिखित प्रतियो का उल्लेख खोज-विवरणो मे किया गया है, वह वस्तुत. रसरत्न का विवरण है।[1] अतः रसरत्नमाला सूरति मिश्र का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नही है।

'भक्तमाल' 'श्रीनाथविलास' नाम से जिन ग्रन्थो को 'शृंगारसार' मे सूरति मिश्र कृत बताया गया है, वे न तो खोज-विवरणो में कही भी उल्लिखित है और न मुझे या अन्य किसी विद्वान को ही उनकी प्रतियाँ मिली है। अतः इन पुस्तको का अस्तित्व शंकास्पद है। ऐसा प्रतीत होता है कि भक्तिविनोद मे संकलित उन छदो को जिनसे इन शीर्षको का सम्बन्ध है 'शृंगारसार' के क्षेपककर्त्ता ने स्वतन्त्र ग्रन्थो के रूप मे स्वीकार कर लिया है।

निष्कर्ष—सूरति मिश्र के नाम से प्रसिद्ध सभी ग्रन्थो की हस्तलिखित प्रतियो की छान-बीन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि उन्होने केवल १७ पुस्तकों की ही रचना की थी, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१. भक्ति-विनोद

२. नख-सिख

३. रामचरित

४. श्री कृष्णचरित

---

१. देखिए, सभा का खोज विवरण भाग १३ वर्ष—१९२६—२८ ग्रन्थाङ्क ४७४ एस; तथा खोज-विवरण १९०१ वि०, ग्रन्थाङ्क ८६; खोज-विवरण १९०६—८, ग्रन्थाङ्क २४३ डी, आदि।

५ रासलीला

६. दानलीला

७ प्रबोधचन्द्रोदय भाषा

८ रसगाहक-चन्द्रिका

९. जोरावरप्रकाश

१०. अमरचन्द्रिका

११ कविप्रिया-टीका

१२ रसरत्न-और उसकी टीका

१३. छंदसार-पिंगल

१४ कामधेनु-कवित्त

१५ काव्य सिद्धान्त

१६. अलंकारमाला

१७. वैतालपचीसी

अंतिम ग्रन्थ का मूल व्रजभाषा रूप अब उपलब्ध नहीं है। अत उसे उनके उपलब्ध ग्रन्थों में सम्मिलित करता उचित नहीं।

———

स—सूरति मिश्र के ग्रन्थों का सामान्य परिचय

सूरति मिश्र के समस्त ग्रन्थो को विषय की दृष्टि से निम्नाकित चार वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है :—

१—मौलिक काव्य, भक्तिविनोद, नखसिख, दानलीला, रास-लीला, रामचरित, श्रीकृष्णचरित तथा फुटकर छन्द ।

२—अनूदित काव्य,-प्रवोधचन्द्रोदयभापा

३—रीति-साहित्य—रसरत्न, काव्यसिद्धान्त, छन्दसार-पिंगल, कामधेनु-कवित्त, अलकारमाला ।

४—टीका-साहित्य—जोरावरप्रकाश, रसगाहकचन्द्रिका, कविप्रिया-टीका अमरचन्द्रिका एव रसरत्न-टीका ।

यहा हम संक्षेप मे इस वर्गीकरण के अनुसार सूरति मिश्र के समस्त उपलब्ध साहित्य का सामान्य परिचय प्रस्तुत करेंगे ।

१. मौलिक काव्य

१. भक्तिविनोद

२२३ छन्दो मे लिखित यह ग्रन्थ एक मुक्तक काव्य है । कवि ने इस ग्रन्थ की रचना सवत १७८५ वि० मे की थी । उसने इस सम्बन्ध मे छन्द-संख्या १७४ के पश्चात निम्नाकित वार्ता प्रस्तुत की है'—

"वरस गाँठ को कवित्त तहाँ सवत सत्रह सौ पच्चासी जानिये । भाद्रपद कृष्णाष्टमी ग्रन्थ जन्मा । प्रान सिद्ध सुख भूम यामे संवत जानिये ।१७८५।।"

इस वार्ता के पश्चात भी ग्रन्थ मे ४९ छन्द मिलते है । इन छन्दों का विषय भी भक्ति की सीमा मे ही आता है । अत सम्भव है कि १७८५ वि० के पूर्व या पश्चात भक्ति-सम्वन्धी अन्य फुटकर छन्द भी इस ग्रन्थ मे जोड दिए गए हो ।

भक्तिविनोद को हम कृष्ण-भक्ति-प्रधान काव्य कह सकते है, किन्तु ईश्वर के अन्य रूपो, भक्ति-सम्वन्धी सास्कृतिक प्रसंगों तथा प्रकृति के मनोरम

चित्रों का भी उसके साथ विस्तार से चित्रण किया गया है। इस काव्य मे निम्नाकित विपयो पर समय-समय पर लिखे गये छन्द सकलित हैं—

ध्यान, नाममहिमा, विनय, मन-शिक्षा, देव-स्तुति, गुरु-वन्दना, विविध वर्णन, श्री कृष्ण-जन्म, राधा-जन्म, बाल-लीला, पर्व-वर्णन, गोवर्द्धन-धारण, श्रीकृष्ण-ध्वजा, राम-लीला, प्रिया की आसक्ति, दधि-दान. वसत-वर्णन, जल-यात्रा, रथ-यात्रा. अन्य वर्णन (तीज पत्रिका खराऊँ राखी) वर्प-गाँठ ग्वाल-मण्डली. प्रेम-वर्णन. मान-वर्णन. प्रवास-विरह बारहमासा. पट्ऋतु-वर्णन. रामचरित-प्रसग भक्तोद्धार उद्धव-गोपी-सवाद द्रौपदी-विनय द्वारका-प्रसग तथा सुदामा-सकोच।

कवि ने इन विपयो के माध्यम से अपनी भक्ति-भावना का विस्तार से चित्रण किया है। वह श्रीकृष्ण एवं राधा के प्रति पूर्णत समर्पित है तथा ईश्वर के अन्य रूपो मे भी उसी परम सत्ता का सर्वत्र दर्शन करता है। उसकी भक्ति-भावना प्रेम, श्रद्धा और समर्पण की गभीर व्यजना पर आधारित है। भक्ति की व्यापक सीमा मे जड-चेतन के विविध प्रेम-व्यापारो का विपद चित्रण होने के कारण मनुष्य की अन्तः प्रकृति तथा रमणीय वहिप्रकृति को समान रूप से स्थान मिला है।

यह एक मौलिक भक्ति-काव्य है। इसकी भापा सरस व्रजभापा है। कवित्त और सवैया छन्दो का प्रयोग करके कवि ने रीतिकालीन शिल्प का परिचय दिया है। यो लीलावती, माझ मुजग-प्रयात दोहा आदि कुछ छन्दो का भी प्रयोग किया गया है, किन्तु वे कवि के अधिक प्रिय छन्द नही है।

कवि ने इस ग्रन्थ की रचना कहाँ रह कर की थी इसका कोई प्रमाण नही मिलता, किन्तु विपयाभिव्यक्ति की स्वच्छन्दता तथा ईश्वर के प्रति समर्पण भाव के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस ग्रन्थ की रचना के समय कवि किसी राजा का आश्रित नही रहा होगा।

२ नखसिख

इस ग्रन्थ की जो प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं, उनमे रचना-काल का कोई उल्लेख या सकेत नही है। किसी अन्य साक्ष्य से भी इसकी रचना के समय का ठीक-ठीक पता नही चलता। इस काव्य मे कवि की प्रतिभा की प्रौढता स्पष्ट झलकती है एव श्रृंगार चित्रण की रुचि भी प्रधान है जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसकी रचना "भक्ति-विनोद" के पश्चात हुई होगी।

यह ग्रन्थ रीतिकाल मे पर्याप्त प्रसिद्ध रहा होगा। यही कारण है कि शृंगार-सम्बन्धी कई सग्रहो मे इसके छन्द प्रतिष्ठा पूर्वक संकलित किए गए है। आधुनिक काल के आरम्भिक ब्रजभाषा कवि सरदार ने भी अपने महत्व-पूर्ण ग्रन्थ "शृंगार-सग्रह" मे इसके काव्य कतिपय छन्दो को स्थान दिया है।

उदाहरणार्थ—

किधौ यह पान पै बसीकरन मन्त्र लिख्यौ
देखि छवि मोहै कोऊ विद्या पचसर की।

हृदय सरोवर शृंगार जल भरयौ कैधौ
उमडि चल्यौ है नाभि कुण्डिका गहर की।

छोटे-छोटे आखरनि अबला लिखाए ये तौ
अपनी सवलताइ 'सूरति' समर की।

जिन्हें देखे नैननि की गति मति भाजी यह
तेरो 'रोम' राजी कैधौ वाजी वाजीगर की।[1]

कैधौ विधि-रचना की रची है कसौटी यह
अरुन वरन अचरज मन ह्वै रह्यौ।

कैधौ तेरी वानी ठकुरानी मनमानी ताकी
राती फूल सेज रग जाते न कछू कह्यौ।

'सूरति' सु कैधौ वोल रतन अमोल दान
दै दै सवही को सुख दुख सव ही दह्यौ।

नैक हू बखानि सकै काहू कौ सुवस ना,
जु रस तेरी रचना सु रस ना कहूं लह्यौ।[2]

---

१. शृंगार-सग्रह, सरदार कवि (कविता-काल १९०२–१९४० वि०), ।–मु[illegible] २१ वि० का संस्करण, आनन्दवन छापाखाना. बनारस

इस काव्य मे कुल ४१ छंद हैं। कवि ने नायिका के नख-शिख सौन्दर्य का, जिसमे अंग और आभूषण दोनो सम्मिलित है, मुक्तक शैली मे आलंकारिक वर्णन किया है। सभी वर्णन रम्य एव व्यजना-पूर्ण हैं। भाषा ब्रजभाषा है तथा कवित्त-सवैया की शैली अपनाई गई है।

३. दानलीला

यह १४ छंदो की एक लघु मुक्तक रचना है इसमे कृष्ण, राधा तथा गोपियो की दधि-लीलाओं का भक्ति-भाव-पूर्ण चित्रण है। एक छंद भक्ति-विनोद और उ[illegible] मे समान है।[1] इस पुस्तक का रचना-काल अज्ञात है, किन्तु काव्य-[illegible] की प्रौढता एवं भक्ति-विनोद के एक छंद के समावेश से यह अनुमान होता है कि इसकी रचना भी सम्वत् १७८५ वि० के आसपास ही की गई होगी। इस काव्य मे भी कवित्त-सवैया कवि के प्रिय छंद है, भाषा ब्रजभाषा है एव संवाद की शैली अपनाई गई है।

४. रासलीला

इस कृति मे कृष्ण-रासलीला के ३६ छंद संकलित हैं। जिनमे से ५ छंद भक्ति-विनोद मे भी मिलते हैं।[2] यह पुस्तक भी कृष्ण-भक्ति की सुन्दर रचना है। इसकी रचना दानलीला के साथ ही की गई होगी, किन्तु रचना-काल का कोई उल्लेख न होने से निश्चय-पूर्वक कुछ भी नही कहा जा सकता।

५. रामचरित

यह १२ छंदो का लघु प्रबन्ध-काव्य है। इसमे दशरथ के घर राम के अवतार, विश्वामित्र-आश्रम-गमन, ताडिका-संहार, सीता से विवाह, वन-वास, भरत का चित्रकूट-गमन और पादुका लेकर अयोध्या-आगमन, राम द्वारा मारीचि-वध, सीता हरण, शबरी-सत्कार, बालि-वध, हनुमान द्वारा लंका-दाह, सागर-संतरण, लंका-युद्ध, सीता-मिलन, अयोध्या मे पुनरागमन और राजतिलक, सीता-निर्वासन, लवकुश-युद्ध और अन्त मे अयोध्या का आनन्दोत्सव आदि के प्रसंग संक्षेप मे प्रस्तुत किये गए है।

इस पुस्तक मे भी रचना-काल का उल्लेख नही है। इसकी भाषा ब्रज भाषा है, जो अधिक प्रौढ नही है। विषय-वर्णन तथा काव्य-शिल्प मे कवि-

---

१. छंद-संख्या १३ भक्तिविनोद मे छंद-संख्या १५१ पर है।

२. छंद-संख्या ४,१४,२६,२७, एव २९ भक्ति-विनोद के छंद-संख्या १४०, १३३,१३०, १३१ तथा १५० पर हैं।

प्रतिभा का आरम्भिक रूप मिलता है। अत: निश्चय ही यह पुस्तक भक्तिविनोद से पूर्व की रचना है।

६. श्रीकृष्णचरित

इस काव्य मे १२ छदो मे श्रीकृष्ण के चरित की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है। कथा का आरम्भ श्रीकृष्ण के जन्म से हुआ है। नन्द-यशोदा के घर उनका पालन-पोषण, पूतना-वध, माखन-चोरी, अघासुर-वध, चीर-हरण, गोवर्द्धन-धारण, रास-लीला, कंस-वध, भ्रमर-गीत, जरासध-वध, द्वारिका-गमन, रुक्मिणी-विवाह, सुदामा-प्रेम आदि प्रसंगो का उल्लेख मात्र करके कवि ने इस तथ्य पर बल दिया हैं कि प्रभु सदा भक्त के हितार्थ अनेक लीलाएँ करते है। काव्य की भाषा ब्रजभाषा है तथा प्रमुख छद चौपाई है। इस काव्य मे भी रचना-काल का उल्लेख नही है। विषय-वर्णन तथा अभिव्यंजना के आधार पर यह अनुमान होता है कि इस काव्य की रचना भक्ति-विनोद से पहले हुई होगी। यह कृति भरतपुर मे उपलब्ध भक्तिविनोद की प्राचीन प्रति के साथ ही लिखी हुई है तथा अन्तिम छंद एवं पुष्पिका मे 'सूरति' कवि का उल्लेख भी है।

७ फुटकर छंद

सूरति मिश्र ने फुटकर रूप मे भी समय-समय पर पर्याप्त छद लिखे होंगे, किन्तु वे सभी अब उपलब्ध नही है। कुछ छद हमे राय शिवदास कृत 'रससरस' ग्रन्थ मे मिले हैं। हमने उनको 'सूरति' नाम की छाप के आधार पर संकलित किया है।[1] 'रससरस' मे उनके कुछ ऐसे छंद भी हो सकते है, जिनमें उनके नाम की छाप न हो, किन्तु उन्हे छाँट सकने का कोई प्रामाणिक आधार हमारे पास नही है।

सूरति मिश्र ने जो टीकाएँ लिखी हैं, उनमें भी उन्होंने स्व-रचित फुटकर छद सम्मिलित किये हैं। इनमे से अधिकाश छदो का सम्बन्ध टीका के मूल विषय से ही है, किन्तु कुछ छन्द ऐसे भी है, जो शुद्ध मौलिक काव्य की कोटि मे आते है। इस प्रकार के कुछ छन्द कवि की 'रसगाहकचद्रिका' टीका मे मिलते है।[2]

हमे फुटकर रूप से सूरति मिश्र का जो काव्य उपलब्ध हुआ है, वह अधिकाशतः शृंगार-परक है, जो रस आदि के उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत किया

---

१. देखिए परिशिष्ट—१. रस-सरस से सकलित छंद।

२. देखिये परिशिष्ट—१. रसगाहकचद्रिका से संकलित छद।

गया है। कुछ छन्दो मे राज-प्रशस्ति भी मिलती है। सभी छन्दों की भापा व्रजभापा है।

२. अनुदित काव्य

प्रवोधचंद्रोदय-भाषा

सँस्कृत का 'प्रवोधचन्द्रोदय' नामक नाटक हिन्दी-कवियो को बहुत प्रिय रहा है। मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य के इतिहास मे इसके कई अनुवादो का उल्लेख मिलता है। सूरति मिश्र ने भी व्रजभापा-पद्य मे इसका अनुवाद किया था, जो प्रवोध चन्द्रोदय-भापा के नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ सस्कृत के मूल नाटक का छायानुवाद मात्र है तथा कही कही पर स्वतन्त्र भाव भी व्यक्त किये गए है।

सस्कृत का मूल नाटक व्रह्मोपासना के मगलाचरण से आरम्भ हुआ है और सूरति मिश्र ने अपने अनुवाद का आरम्भ निम्नाकित गणेश-वन्दना से किया है —

> गुण गणेश गावौ गुणी, सवविधि सुख सरसाइ।
> वाढै वुद्धि विवेक वल, महामोह मिटि जाइ ॥१॥

इसके पश्चात् निराकार व्रह्म की स्तुति की गई है.—

> अलख अनादि अनत अज, अद्भुत अतुल अमेव।
> अविनासी अद्वय अमित, नमस्कार तिहि देव ॥२॥

कवि ने स्पष्ट लिखा है कि मैं सस्कृत के प्रवोधचन्द्रोदय नाटक की कथा को भापा अर्थात् व्रजभापा मे प्रस्तुत कर रहा हूँ —

> है अवोध नाटक विदित, कथा जु सस्कृत माँहि।
> सो यह भापा मे कियौ, जिहि सुनि सव दुख जाहि ॥३॥

उसने आगे लिखा है कि—

> कही कथा संक्षेप ते, सूरति सुकवि वनाइ।
> रोचक अरु वह समझिये, तौ भव तरन उपाइ ॥४॥

आगे २-३ छंदो तक कथा का विस्तार हुआ है। कवि ने पुस्तक के नाम के साथ 'नाटक' शब्द का प्रयोग नही किया। वस्तुत उसने सस्कृत के नाटक की कथा को काव्य का रूप दिया है, जिसमे मूल नाटक के पात्रो का प्रयोग

पद्यो का अंश वना कर किया गया है। अत. हम इस पुस्तक को अनूदित काव्य की श्रेणी मे रख सकते है।

सूरति मिश्र ने प्रबोधचंद्रोदय के अनेक प्रसगो को नवीन रूप मे रोचक वनाने की चेष्टा की है। यथा, काम और रति के वर्णन के प्रसग में कवि लिखता है —

सग लिए रति नाम वाम, अभिराम रूप को धारै।
मद घूमत नैना रतनारे प्रिया-कठ भुज डारै।।
फूलन के गहने, फूलन के धनुष-वान कर सोहै।
सुन्दर श्याम सलौनी मूरति, जाहि देखि सब मोहै ।।१।।[1]

पुस्तक मे रचना-काल का उल्लेख नही है, किन्तु जोरावरप्रकाश के पश्चात् यह काव्यानुवाद सम्पन्न हुआ हो, ऐसा सम्भव है, क्योकि इसका विषय शृंगार से थके हुए आश्रयदाता की मनोवृत्ति को तुष्ट करने वाला है। जोरावरप्रकाश की रचना सवन् १८०० वि० मे हुई थी, अत प्रबोधचद्रोदय-भाषा की रचना १८०० वि० के कुछ वर्ष पश्चात् मानी जा सकती है।

३. रीति-साहित्य

(१) अलंकारमाला

यह सूरति मिश्र का प्रसिद्ध रीति-काव्य है, जिसका उल्लेख कई साहित्यकारो एव और आलोचना-ग्रन्थो मे हुआ है। इसमे अलंकारो के लक्षण और उदाहरण दोहा छद मे प्रस्तुत किए गए है। कवि ने आरभ मे रचना का उद्देश्य वताते हुए लिखा है:—

अलकार कवितान के, सवन समझिवे हेत।
रच्यौ ग्रन्थ "सूरति" सु यह, लक्षण-लक्ष्य-निकेत ।।[2]

इस काव्य मे उपमा अलकार से अर्थालकारो का वर्णन आरंभ हुआ है तथा शब्दालकारों पर मध्य मे विचार किया गया है। लगभग सभी महत्व-पूर्ण अलकारों को स्वरचित उदाहरण देकर स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। अन्त मे कवि ने रचना-काल का उल्लेख इस प्रकार किया है:—

---

१. प्रवोधचन्द्रोदय- ।।

२. अलंकारमाला, , सूरति मिश्र, छंद २

संवत सत्रह सै बरस, छासठ सावन मास।
सुर गुरु सुद एकादशी, कीनौ ग्रन्थ प्रकास ।। [१]

इस दोहा के आधार पर इस ग्रन्थ का रचना-काल सवत् १७६६ वि सिद्ध होता है, जिसे डा. भागीरथ मिश्र, डा. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प. रामचंद्र शुक्ल आदि विद्वानों ने भी खोज-रिपोर्टों के आधार पर स्वीकार किया है। इसी ग्रन्थ के अन्त मे निम्नांकित दोहा भी मिलता है, जिसके अनुसार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानों ने सूरति मिश्र को आगरा-निवासी माना है—

सूरति मिश्र कनौजिया, नगर आगरे वास ।
रच्यौ ग्रन्थ तिह भूपननि, वलित विवेक विलास ।। [२]

सूरति मिश्र की अन्य कृति "काव्य-सिद्धान्त" मे भी छद-संख्या १२१ मे अलकारमाला का उल्लेख मिलता है। यथा—

अलकारमाला विपै, अलंकार लखि लेहु ।
यह विधि कविता रचहु तिय, कृष्ण गुनन चित्त देहु ।।

इस काव्य मे अलकारो का विवेचन सरल ढंग से सुवोध शैली मे किया गया है। आवश्यकतानुसार विषय को स्पष्ट करने के लिये गद्य मे वार्ताएँ भी दी गई है तथा प्रश्नोत्तरो की शैली भी अपनाई गई है। भापा व्रजभापा है, जो सुवोध और व्यजना-पूर्ण है।

२; रसरत्न

यह सूरति मिश्र कृत रस-वर्णन-सम्बन्धी ग्रन्थ है। इसमे कुल ६५ छंद है, जिनमे से १४ कवित्त विषय का मूलाधार हैं। कवि ने स्वय लिखा है—

चौदह ये सब कवित्त है, चौदह रतन प्रमान ।
याते नाम सुग्रन्थ को, यह रसरत्न सुजान ।। [३]

इन कवित्तो के साथ दोहों मे विपय का विस्तार किया गया है। इस काव्य मे सभी रसों का वर्णन नही है, केवल शृंगार रस, उसके भावादि और उससे सम्बन्धित नायक-नायिका भेद का चित्रण संक्षेप मे किया गया है।

---

१. अलकारमाला, सूरति मिश्र, सम्पादक डा, दिनेश; अन्तिम पृष्ठ का छंद।
२. अलंकारमाला, सूरति मिश्र, सम्पादक डा. दिनेश, अन्तिम छंद।
३. रसरत्न, रचयिता-सूरति मिश्र, सम्पादक-डा. दिनेश, छद ६५

कवि ने इस अन्तिम छद मे ग्रन्थ की रचना के समय का इस प्रकार उल्लेख किया है—

"वसु रस मुनि विधु सवतहि माधव रवि दिन पाइ।
रच्यौ ग्रन्थ सूरति सु यह, लहि श्रीकृष्ण सहाइ ।।"[1]

इससे सिद्ध है कि इस ग्रन्थ की रचना सवत १७६८ वि० मे हुई थी।

(३) छंदसारपिंगल

इस ग्रन्थ मे विभिन्न छंदो मे छंदशास्त्र का सरस वर्णन किया गया है। सूरति मिश्र ने आरभ में ही यह स्पष्ट कर दिया है कि मै अपनी बुद्धि से पिगल का कुछ वर्णन कर रहा हूँ—

कृष्ण चरन चित आन, कहौ सुमति पिगल कछू।
जिह तै छदह ज्ञान, प्रभु-गुन ता महि बरनिये ।।[2]

हमे इस ग्रन्थ की जो प्रतियाँ मिली है, उनमे रचना-काल का उल्लेख नही है, किन्तु काव्य सिद्धान्त मे इस ग्रन्थ का भी नाम आया है, जिससे यह सिद्ध है कि "छदसार-पिगल" की रचना "काव्य-सिद्धान्त" ग्रन्थ से पहले हो चुकी थी। कवि ने लिखा है :—

व्रत्त विचार कहे सु तो, छदसार लखि मित्त।
नव रस कहुँ सक्षेप तैं, कहत सुनहु दै चित्त ।।[3]

इस ग्रन्थ मे मात्रिक एव वर्णिक दोनो प्रकार के सभी प्रमुख छदों के लक्षण उदाहरण देकर पद्य मे समझाए गए है। भाषा ब्रजभाषा है तथा विवेचन की शैली पर्याप्त रोचक और स्पष्ट है।

(४) कामधेनु–कवित्त

सूरति मिश्र का छदशास्त्र-सम्बन्धी यह द्वितीय ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ मे कुल १२६ छद है, जिनमे प्रारभ में ९ दोहो मे ग्रन्थ का परिचय दिया गया है। तत्पश्चात एक कवित्त है, जो मूल "कामधेनुकवित्त" कहा जा सकता है,

---

१. रसरत्न, रचयिता-सूरति मिश्र, सम्पादक-डा दिनेश, छद ६५
२. छंदसार-पिंगल, रचयिता-सूरति मिश्र सम्पादक-डा दिनेश, छद १
३ काव्य-सिद्धान्त, रचयिता-सूरति मिश्र सम्पादक-डा. दिनेश, छंद ६३

क्योकि इसी एक छद से ६४ छदो एव १५ रागों के लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत किए गए है। यह ग्रन्थ कवि की छदशास्त्र-प्रवीणता का परिचायक है। एक ही कवित्त मे भिन्न-भिन्न क्रमो मे आदि, मध्य और अन्त से शव्द-त्याग एवं ग्रहण करके ६४ छदो एव १५ रागो के लक्षण तथा उदाहरण निकालने का काम भी कवि ने स्वय पूर्ण किया है, जिससे उसकी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय मिलता है।

इस ग्रन्थ मे रचना काल का उल्लेख करते हुए अन्त मे एक दोहा इस प्रकार दिया गया है—

सत्रह सै उनअठ वरस, माधव सुदि गुरुवारु।
पुष्य सप्तमी कौ भयौ कामधेनु अवतारु॥

इससे सिद्ध है कि इस ग्रन्थ की रचना १७७६ वि० मे हुई थी।

(५) काव्य-सिद्धान्त

सूरति मिश्र ने इस ग्रन्थ की रचना सवत् १७६८ वि६ मे की थी, जैसा कि निम्नांकित दोहा से सिद्ध है —

जलत दीप परकास कों, सुभ सु ब्रह्म अवतार।
सत्रह सै अट्ठानवै, फागुन सुदि वुधवार॥[1]

इस ग्रन्थ मे पद्य-शैली मे काव्य के सभी प्रमुख तत्वो पर विचार किया गया है। आरम्भ में कवि ने काव्य-लक्षण, काव्य-प्रयोजन, शव्द-शक्ति आदि पर विचार किया है, तत्पश्वात् काव्य-दोपों, काव्य-गुणो, नव-रस और भावो पर विचार किया गया है।

अपने अन्य रीति-काव्यो के समान इस काव्य मे भी सूरति मिश्र ने आरम्भ मे श्रीकृष्ण और रावा का भक्ति-पूर्वक स्मरण किया है तथा कवि की परिभाषा देते हुए लिखा है कि .—

कवि ताही कूँ कहत है, समझै कविता अग।
व्रजसविता-गुन जो कहै, तौ छविता प्रति अ ग॥[2]

कवि की वंर्णन-पद्धति सरल है तथा कठिन विपय को भी सुवोध वनाने के लिए वह सदैव सचेष्ट रहा है, इसलिए उसने अनेक स्थलो पर सरस उदाहरण

---

१. काव्य-सिद्धान्त, रचयिता-सूरति मिश्र सम्पादक-डा. दिनेश, छद १४७

२, काव्य–सिद्धान्त, रचयिता–सूरतिमिश्र सम्पादक–डा० दिनेश, छद–२

दिए है तथा प्रश्नोत्तर की शैली भी अपनाई है। काव्य की भाषा ब्रजभाषा है। इस ग्रन्थ मे कवि की अलंकारमाला, रसरत्न तथा छंदसार-पिंगल नामक रचनाओ का भी उल्लेख है।

४. टीका-साहित्य

(१) जोरावरप्रकाश

इस ग्रन्थ मे प्रसिद्ध कवि केशवदास कृत रसिकप्रिया की टीका ब्रज-भाषा-गद्य मे प्रस्तुत की गई है। आरभ मे कवि ने भक्तिविनोद का निम्नाकित छद मंगलाचरण के रूप मे प्रस्तुत किया है—

पूजि मन वाकों, आदि मानै जग जाकों,
नर ध्याइ नैक ताकों सुख लहै सिद्धि गति कों।

परम दयाल वड़े पूरन कृपाल, करे
छिन में निहाल दै कै आनन्द सु अति को।

चरन सरन जाकी भरति मनोरथनि,
'सूरति' भवन तीनों यहै मतौ मति कौ।

हेत है सुखासन कौ, बुद्धि के प्रकासन कौ,
विघन विनासन कौ नाम गरणपति कौ।

इस छद के पश्चात् कवि ने १९ दोहो मे बीकानेर के राज-वंश और राजा जोरावरसिंह की प्रशसा की है। इन्ही जोरावरसिंह के आश्रय में रह कर यह ग्रन्थ लिखा गया था। अत. इन्ही के नाम पर कवि ने इसका नामकरण "जोरावरप्रकाश" किया है। इक्कीसवे दोहे मे ग्रन्थ-रचना का समय इस प्रकार उल्लिखित है :—

सवत् सत अष्टादशे, फागुन सुदि गुरुवार।
जोरावरप्रकाश कौ, तिथि सप्तमि अवतार।।

इससे सिद्ध है कि इस ग्रन्थ की रचना फाल्गुन सुदि सप्तमी गुरुवार को सवत् १८०० वि० मे हुई थी।

इस ग्रन्थ मे "रसिकप्रिया" का पूर्ण पाठ संकलित है तथा हर छंद के पश्चात् गद्य मे विस्तृत व्याख्या दी गई है, जिसमे शब्दों के गूढ़ अर्थ बिस्तार से समझाते हुए अभिप्राय की गहराई को स्पष्ट किया गया है। आवश्यकतानुसार

अलकार-निर्देश भी किया गया है। अन्त मे कवि ने इस टीका का लक्ष्य स्पष्ट किया है, जिसमे शृ गार के स्थान पर भक्ति और ज्ञान-वर्द्धन की प्राप्ति का सकेत है। वह लिखता है—

जोरावर परकास कों पढ़ै गुनै चित लाइ।
बुद्धि-प्रकाश रु भक्ति निज, ताहि देहि हरिराइ ॥[1]

(२) रसगाहक-चद्रिका

इस ग्रन्थ का आरभ निम्नाकित मगलाचरण से हुआ है—

रसिक-सिरोमनि रसिक-प्रिय, रस-लीला चितचोर।
रसा रास रस-मयकरी, जय जय जुगलकिशोर ॥१॥

आगे कवि ने लिखा है—

रसिकप्रिया टीका रची, सूरति सुकवि वनाइ।
यह रस गाहकचद्रिका, नाम धरो सुखदाइ ॥२॥

जिहि प्रकार इहि ग्रन्थ की, रचना प्रगटी आनि।
सो कारण सुनिये सकल, कवि कोविद सुखदानि ॥३॥

तखत जहानावाद मे, श्री नसरुल्लहखॉन।
दान ज्ञान किरपान विधि, जस जिहि प्रकट जहान ॥४।

इसी नसरुल्लाहखॉन के आश्रय मे रह कर यह टीका लिखी गई थी। वह स्वय भी अच्छा कवि था और कविता मे अपना उपनाम "रसगाहक" रखता था। उसके इस उपनाम पर ही सूरति मिश्र ने टीका का नाम "रसगाहक चन्द्रिका" रखा था। कवि ने रचना-काल का उल्लेख करते हुए लिखा है कि—

सत्रह से इक्यान,वे माधव सुदि रविवार।
यह रसगाहकचन्द्रिका, पुष्य नखत अवतार ॥

कवि ने ग्न्थ का आरम्भ करने से पूर्व विस्तार से अपने और आश्रय-दाता के सम्वन्ध पर प्रकाश डाला है तथा वतलाया है कि नसरुल्लहखान को रसिकप्रिया पढाने के लिए यह ग्रन्थ लिखा गया था।

---

१. जोरावरप्रकाश, सम्पादक—डा०दिनेश, पोडश प्रभाव, छद १८।

इस टीका मे गद्य के स्थान पर पद्य की शैली का प्रयोग हुआ है। इसमे "रसिकप्रिया" के सभी छद सकलित नही है, केवल उसके मुख्य छदों का सकेत है और वह भी व्याख्या के साथ जुडा हुआ है। यथा—

"अथ ग्रन्थ-प्रसग आरम्भ

प्रथम मंगलाचरण की, छप्पै कही वखानि।
एक रदन गज वदन या में प्रश्न सु जानि।।

मदन ग्रन्थ रसिकप्रिया, काम केलि इहि माँहि।
मदन कदन कहि क्यों बनैं, रस पोषक यह नाहि।।"[1]

कवि ने पद्य मे प्रश्नोत्तर शैली अपनाई है और इसके साथ कही-कही प्रश्नोत्तर के साथ मे गद्य का भी प्रयोग किया है। यथा—

(१) तहाँ और अर्थ करि उत्तर
(२) सिद्धान्त अर्थ को उत्तर

समस्त ग्रन्थ में व्याख्या को प्रश्नोत्तर के द्वारा सरल बनाने की चेष्टा की गई है, किन्तु उस चेष्टा मे कवि की प्रतिभा ने अनेक स्थानो पर मौलिक काव्य-जैसी गभीरता भी पैदा करदी है।

इस ग्रन्थ मे पद्य-शैली के प्रयोग के कारण विषय का विस्तार उतना नही है, जितना 'जोरावरप्रकाश' मे है, तथापि पद्य-शैली के प्रयोग के कारण प्रभाव की गरिमा इसे अवश्य अधिक प्राप्त हुई है।

(३) कविप्रिया-टीका

सूरति मिश्र ने केशवदास-कृत कविप्रिया की टीका के रूप मे प्रस्तुत पुस्तक की रचना की है। इसमे पूर्ण कविप्रिया को स्थान मिला है, जिससे उसके नए पाठ पर प्रकाश पडता है।

ग्रन्थ का आरभ निम्नाकित मगलाचरण से हुआ है :—

गरुडपाल गिरिपाल, गौरि गिरा गण ग्रहण गुरु।
ए जिहि रूप रसाल, वंदों पग तेहि जुगल के।।

इसके पश्चात मूल ग्रन्थ के छद और उनके साथ यथावश्यक टीकाएँ पद्य में प्रस्तुत की गई है। कही-कही गद्य मे वार्ताएँ भी मिलती है, पर वे बहुत

१ रसगाहकचन्द्रिका, सम्पादक—डा० दिनेश, प्रथम विलास, छद—३८

कम है। सभी छदो की टीकाएँ नही दी गई है। कवि ने उन अशो को चुन लिया है, जो गभीर भाव रखते है और उन पर विस्तार से विचार किया है। जो अश सरल है, उन्हे सकलित करके कवि आगे बढ गया है। फलत. इस ग्रन्थ मे विस्तार की अपेक्षा विवेचन की गभीरता मिलती है। उदाहरण के लिए, निम्नाकित दोहे की टीका तीन दोहो मे की गई है—

गजमुख सनमुख होत ही, विघन विमुख ह्वै जात।
ज्यो पग परत प्रयाग मग, पाप-पहार विलात ॥१॥

टीका इस प्रकार है .—

'टीका . प्रश्न—

विघनन कौ विमुखै कह्यौ, पापनि कह्यौ विलात।
एक कौ भगिवो एक कौ, नासन यह सम बात ॥२॥

ताते यह दृष्टान्त की, क्रिया मध्य समतानि।
वर्णनीय की नूनता, यह कवि जन सुखदानि ॥३॥

उत्तर—

विमुख अर्थ यह विगत मुख, कहा कि शिर बिनु होत।
जाते विमुख विलात को, नसिवौ अर्थ उदोत ॥४॥[1]

इस ग्रन्थ मे रचना-काल का उल्लेख नही है और किसी आश्रयदाता का भी सकेत नही है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह ग्रन्थ भी किसी आश्रय-दाता को काव्य-सिद्धान्तो की शिक्षा देने के लिए ही लिखा गया है। कवि ने जिन आश्रयदाताओ को काव्यशास्त्र की शिक्षा दी थी, उनमे बीकानेर के जोरावरसिह एव जहाँनाबाद के नसरूल्लहखाँन मुख्य है। इन दोनो के आश्रय मे सूरति मिश्र १७९० से १८०० तक रहे थे। अतः "कविप्रिया की टीका" की रचना भी इसी कालावधि मे हुई होगी, ऐसा माना जा सकता है।

(४) अमरचंद्रिका

विहारीदास की 'सतसई' पर सूरति मिश्र ने अमरचद्रिका नाम से व्रज-भाषा पद्य मे प्रस्तुत टीका लिखी है। इसमे सतसई के सभी दोहे संकलित

---

१ कविप्रिया-टीका, सम्पादक—डॉ० दिनेश, प्रथम प्रकाश, छद १, २, ३ एवं ४।

हैं। वे ५ विलासो मे विभाजित किए गए हैं। यह विभाजन रस की प्रमुखता के आधार पर हुआ है। ग्रन्थ का आरंभ बिहारी के निम्नाकित मगलाचरण से हुआ है—

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाई परै, स्याम हरित दुति होय ।।

कवि ने इसकी टीका विस्तार से १७ दोहों मे की है। आगे सभी दोहों की टीका इतने विस्तार से नही है, किन्तु जो दोहे अधिक मार्मिक हैं, उन पर कवि ने इतना ही ध्यान दिया है।

इस ग्रन्थ की सबसे बडी विशेषता यह है कि सूरति मिश्र ने बिहारी के हर दोहे का भाव अलंकार की व्याख्या करके स्पष्ट किया है।

हर दोहे मे जो अलंकार कवि को मिले है, उनका नाम-निर्देशन ही नहीं किया गया है, अपितु उनकी परिभाषा भी अन्य उदाहरण देकर स्पष्ट की गई है तथा यह समझाया गया है कि बिहारी के सम्बन्धित दोहे मे अमुक अलंकार क्यो माना जाए। अतः यह ग्रन्थ सूरति मिश्र के अलकारशास्त्रीय प्रखर पाण्डित्य का परिचय देता है। जहाँ एक ओर उन्होने बिहारी के दोहो मे अनेक गूढ़ अर्थों का तर्क-पूर्वक प्रश्नोत्तरो व वार्ताओ का सहारा लेकर उद्घाटन किया है. वही उन्होंने अलकारशास्त्र के अनेक पक्षो पर भी प्रकाश डाला है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की पुष्पिका मे १८११ वि० वर्ष का उल्लेख है। यह लिपि-काल हो सकता है और रचना-काल भी। निर्णय के लिए हर 'विलास' के अन्त मे दी गई पक्ति सहायक हो सकती है। उसमे "अमर-सूरत प्रश्नोत्तर" के रूप मे इसकी रचना का उल्लेख है। ग्रन्थ का नाम 'अमर' के नाम पर ही 'अमरचंद्रिका' किया गया है। अतः प्रतीत होता है कि यह पुस्तक 'अमर' नामक किसी आश्रयदाता के लिए लिखी गई थी। ये अमर कौन थे, इसका निर्णय हो जाय तो रचना-काल व स्थान का निर्विवाद निर्णय हो सकता है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने अपना मत व्यक्त करते हुए जोधपुर के दीवान अमरसिंह या अमरेश का उल्लेख किया है और माना है कि 'अमरचद्रिका' उन्ही के आश्रय मे रह कर लिखी गई थी। किन्तु मेरे मत से यह ग्रन्थ जोरावरसिंह के चचेरे भाई अमरसिह के लिए लिखा गया था। अतः पुष्पिका मे दिया गया सवत १८११ इसका रचना-काल माना जा सकता है।

(५) रसरत्न-टीका

सूरतिमिश्र ने स्व-रचित 'रसरत्न' की टीका भी स्वय ब्रजभाषा गद्य मे लिखी थी। टीका के अन्त मे उन्होने ११ दोहो मे इस तथ्य का उल्लेख किया है। वे लिखते है —

अति दुरत भव-निधि सुरति, रहै सत पद पाइ।
सुख अनत सहजै रहै, जो भगवंत सहाइ ॥१॥

पोथी यह रस-रतन की, चौदह कवित प्रसिद्ध।
जिहि विधि यह टीका भई, सुनिये सो बुधि वृद्ध ॥२॥

नगर मेड़ता मध्य है, अति सुसील सुज्ञान।
नाम सु जिहि सुलतानमल, जिनकै गुनि सनमान ॥३॥

तिनकी रुचि के कारनै, सूरति सुकवि वनाइ।
सुगम ग्रन्थ ऐसे कियौ, सव पै समुझ्यौ जाइ ॥४॥

इससे सिद्ध होता है कि रसरत्न की टीका मेडता-निवासी सुलतानमल के आश्रय मे रह कर की गई थी।

टीका के रचना-काल का उल्लेख करते हुए सूरति मिश्र लिखते है :—

सवत् सत अस्टादसै, सावन छटि भृगुवार।
टीका हित सुलतानमल, रच्यी अमल सुख सार ॥१०॥

इससे स्पष्ट है कि टीका की रचना श्रावण मास मे ६, भृगुवार को सवत् १८०० वि० मे की गई थी। इस टीका मे कवि ने रसरत्न के पद्यों का आशय ब्रजभाषा गद्य मे स्पष्ट करने मे पूर्ण सफलता प्राप्त की है। भावार्थ को प्रस्तुत करने के साथ-साथ शब्दार्थ पर गभीरता से विचार किया गया है।

यथा—

दोहा—नव रस आदि सिगार पुनि, हास करुन रुद वीर।
भय विभत्स अद्भुत वरनि, शान्त परम गुन धीर ॥

अर्थ—नव रस है या समार मे, तिन मे प्रथम ही सिगार रस है। सिगार रस तो यह जो नायक-नायिका की प्रीति पूर्ण काम-केलि सम्बन्धी। हास रस जहाँ स्वाँग देखिकै वात सुनि हाँसी पूर्ण आवै। करुना रस सोक में

होत है। रौद्र रस क्रोध में होत है। इनमे अथवा कहूँ वीर रस। जहाँ डर की बात भयानक। विभत्स रस ग्लानि वर्णन। अद्भुत रस अचम्भा जहाँ होइ। सान्त रस परमार्थ। ससार सो विरक्त होनो, प्रभु मे चित्त लगे। ए नव रस कहे। तहाँ अब सिंगार वर्णन करत है॥

अन्त मे आश्रयदाता के परिचय के पश्चात् ८ दोहो मे कवि ने अपना परिचय भी दिया है,[2] जिससे उसके जीवन के सम्वन्ध मे कई तथ्य प्रकाश मे आते है।

निष्कर्ष

सूरति मिश्र के ग्रन्थो के पूर्वोक्त सामान्य परिचय से यह स्पष्ट है कि वे मूलत कवि थे। उनकी रचनाओं मे काव्य-पुस्तको की संख्या अधिक है। उत्कृष्टता की दृष्टि से भी 'भक्तिविनोद' और 'नखसिख' काव्यो को ही प्रमुखता दी जा सकती है। प्रवोध-चंद्रोदय-नाटक का काव्यानुवाद भी उनकी कवित्व-शक्ति का ही परिचायक है। रीति-ग्रन्थों मे भी उनकी काव्य-प्रतिभा की झलक मिलती है। उन्होने काव्य-सिद्धान्तो का प्रभावोत्पादक काव्य-शैली मे वर्णन किया है। इस क्षेत्र मे उन्होने काव्य के सामान्य सिद्धान्तो, रस और नायिका-भेद, अलकार तथा छदो को पद्य मे विवेचन का विषय बनाया है, जो सक्षिप्त होने पर भी विद्वत्ता का परिचायक है।

टीका-साहित्य मे उनकी ५ कृतियो के नाम आते है, जिनमे से एक स्व-रचित रीति-काव्य 'रसरत्न' की टीका है तथा शेष चार टीकाएँ केशव के प्रसिद्ध रीतिकाव्यो, कविप्रिया एव रसिकप्रिया तथा विहारी की सतसई के अर्थ-गांभीर्य को सरल भाषा मे प्रकाशित करती है। इनमे गद्य-शैली का भी प्रयोग मिलता है, जो रीतिकाल के सम्वन्ध मे एक महत्वपूर्ण तथ्य है।

---

१. रसरत्न-टीका, सम्पादक—डॉ० दिनेश, दोहा सं० २ का अर्थ।
२ देखिए, रसरत्न-टीका, सम्पादक—डॉ० दिनेश, करहल की प्रति।

स–सूरति मिश्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का सर्वेक्षण

साहित्येतिहासो, खोज विवरणो तथा आलोचना और अनुसधान-सम्वन्धी ग्रन्थो मे उपलब्ध सूरति मिश्र सम्वन्धी सामग्री का परीक्षण करके हम यह सिद्ध कर चुके है कि प्रस्तुत अध्ययन से पूर्व मिश्रजी के सम्वन्ध मे हिन्दी जगत् का ज्ञान अत्यन्त अल्प प्रमाणहीन तथा पिष्टपेषण मात्र रहा है। अधिकाश विवरण एक विद्वान् से दूसरे विद्वान् तक यथावत चलते रहे हैं, किसी ने भी न तो उनका परीक्षण किया है और न उसकी आवश्यकता ही समझी है। तासी, शिवसिंह, ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, रामचद्र शुक्ल आदि इतिहासकारो ने सूरति मिश्र का जो परिचय दिया है, उससे यह सिद्ध नही होता कि उनमे से किसी ने भी सूरति मिश्र की एक भी कृति देखी और पढी थी। ग्रियर्सन तक विभिन्न विद्वानो ने उनका उतना ही उल्लेख किया है, जितना कवि-परम्परा मे चला आ रहा था। मिश्र बन्धुओ ने कुछ विस्तृत परिचय दिया, किन्तु उसका स्रोत भी केवल खोज-विवरण ही थे। रामचद्र शुक्ल ने मिश्र बन्धुओ तक प्राप्त विवरण को सक्षेप मे प्रस्तुत करके अपने कर्तव्य से मुक्ति प्राप्त कर ली थी। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने "हिन्दी साहित्य का अतीत" ग्रंथ मे खोज-विवरणो मे प्राप्त सूरति मिश्र सम्वन्धी समस्त सामग्री को आलोचनात्मक लेख का रूप दिया, किन्तु तथ्यो की प्रामाणिकता की दृष्टि से उसका भी विशेष महत्व नही है, क्योकि सूरति मिश्र के मूल ग्रथ वे नही देख सके थे। उन्होने इस स्थिति मे जो विवरण प्रस्तुत किए, उनमे अनेक असगतियाँ रह गई। उदाहरणार्थ, उन्होने 'शृंगारसार' नामक एक अप्रामाणिक रचना को खोज-विवरण के आधार पर सूरति मिश्र कृत मान लिया और उसके अनुसार यह तथ्य प्रस्तुत किया कि सूरति मिश्र ने आरम्भ मे भक्ति-काव्य लिखा तथा उसके पश्चात् वे लोकोपकार की दृष्टि से काव्यशास्त्रीय ग्रथो की रचना के लिए प्रेरित हुए। आचार्य जी ने 'अलकारमाला' को, जो स० १७६६ वि० मे लिखी गई थी, भक्ति-काव्य के पश्चात् लिखी गई रचना माना, जबकि 'भक्ति-विनोद' जैसा महत्वपूर्ण भक्ति-काव्य उसके उन्नीस वर्ष पश्चात् लिखा गया था। इसी प्रकार गगेश नामक गुरु की कल्पना, सवसे अत मे अनुवाद

की रुचि और रसगाहकचद्रिका, जोरावरप्रकाश एवं कविप्रिया-टीका को कभी एक ग्रंथ मानना और कभी दो ग्रंथ बताना तथा कभी रसगाहकचंद्रिका को कविप्रिया की टीका घोषित करना आदि बातें इस सत्य का प्रमाण हैं कि उनके समय तक भी सूरति मिश्र के सम्बन्ध में जो ज्ञान चल रहा था, वह खोज-विवरणों की सीमा पार नही कर सका था। रीतिकाल के सम्बन्ध में जो शोध-ग्रंथ लिखे गए, उनमे पूर्वोक्त विद्वानों की अपरीक्षित मान्यताओं का ही उल्लेख होता रहा और किसी ने भी सूरति मिश्र की मूल रचनाओं को खोजने का प्रयास नही किया, केवल डॉ० भगीरथ मिश्र ने अपने "हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास" मे "काव्य-सिद्धान्त" नामक एक हस्तलिखित ग्रंथ का प्रामाणिक रूप मे प्रथम बार उपयोग किया हैं।

पच्चीसी के सम्बन्ध मे खोज-विवरणो मे यह भ्रात तथ्य मिलता है कि खड़ी बोली मे उपलब्ध उसकी प्रतियाँ सूरति मिश्र की रचना हैं और यही भ्राति उन संस्करणो से भी उत्पन्न हुई है, जो वहुत पूर्व लिथो-मुद्रणालयो से प्रकाशित हुई थी। वस्तुत यह वात सत्य नही है। वैतालपच्चीसी' का उपलब्ध रूप लल्लूलाल कृत खड़ी वोली रूपातर है तथा सूरति मिश्र कृत 'वैतालपच्चीसी' का अनुवाद व्रजभापा मे था, जो अव उपलब्ध नही है।

सूरति मिश्र के ग्रंथों का परिचय प्राप्त करते समय भी कई नये तथ्य हमारे सामने आए है, जिनसे पूर्व-विद्वानो द्वारा प्रस्तुत ज्ञान का संशोधन होता है। उदाहरणार्थ, विद्वानो मे यह धारणा थी कि सूरति मिश्र ने अपनी सभी टीकाएँ पद्य मे लिखी है, केवल यत्र-तत्र वार्ताओ के रूप में कुछ गद्य मिलता है। किन्तु हमारे अध्ययन से यह स्पप्ट होता है कि 'रसरत्न' एव 'जोरावर-प्रकाश' की टीकाएँ गद्य मे लिखी गई थी और उनमे प्राप्त गद्य का स्वरूप मिश्र जी की गद्य-शैली की प्रौढता का परिचायक है। एक अन्य नया तथ्य जो भक्ति-विनोद का परिचय देते समय सामने आया हे, वह यह है कि सूरति मिश्र ने शिव और शक्ति की भक्ति मे भी कविताएँ लिखी हैं, जबकि यह माना जाता था कि उन्होने इन दोनो देवताओ की उपेक्षा की है।

सूरति मिश्र के जीवन परिचय के सम्बन्ध में अव तक कोई सामग्री उपलव्ध नही थी। हमने उनके ग्र थो से जो तथ्य एकत्र किए है, उनसे यह सिद्ध है कि उनका जन्म फाल्गुन मास मे शुक्ल पक्ष की सप्तमी को सवत् १७३१ वि० मे आगरा मे हुआ था। उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश के इटावा नगर मे रहते थे, जहाँ से सूरति के पिता सिंहमणि आगरा आकर वसे थे। जाति से वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। उनके परिवार मे वेदशास्त्र के अध्ययन की परम्परा चली आ रही थी। विद्वानो और साधुओ का सत्सग करके सूरति मिश्र ने विद्याओ और शास्त्रो का ज्ञान प्राप्त किया। जीविकोपार्जन के लिए वे जहाँना-वाद, दिल्ली, मेडता, वीकानेर आदि स्थानो पर रहे। काव्य-रचना के अतिरिक्त आश्रयदाता को काव्यशास्त्र की शिक्षा देना उनकी रुचि का कार्य था। उनका अतिम आश्रयदाता अमरसिह था, जो वीकानेर के महाराजा गर्जसिह का ज्येष्ठ भ्राता था। महाराजा जोरावरसिंह की मृत्यु के पश्चात् वे कुछ समय तक उसके आश्रय मे रहे थे।

सूरति मिश्र का स्वभाव सरल और उदार था। वे ईश्वर मे पूर्ण आस्था रखते थे तथा समस्त ससार को उसकी रचना मानकर, चारो ओर फैले हुए सौन्दर्य पर रीझते थे। उनकी ईश्वर-विषयक आस्था वहुत व्यापक

थी। वे सभी देवी-देवताओ और प्रकृति के विभिन्न रूपो को भक्ति की भावना से देखते थे। राधा और कृष्ण की प्रेम-लीलाएँ उनकी उपासना का मुख्य केन्द्र थीं। अपने जीवन मे उन्हे पर्याप्त सम्मान मिला। राजाओ और अमीरों नें उन्हे अपना गुरु बनाया तथा कवि-समाजों मे भी उन्हे प्रतिष्ठा मिलती रही। अमरचद्रिका मे उल्लिखित रचना-काल के अनुसार वे सवत् १८१५ वि० तक जीवित रहे।

सूरति मिश्र ने सत्रह ग्र थो की रचना की थी, जिनके नाम हैं—रामचरित, श्री कृष्णचरित, दानलीला, रासलीला, अलकारमाला, रसरत्न, नखसिख, भक्ति-विनोद, रसगाहकचंद्रिका, कामधेनु-कवित्त, छदसारपिगल, काव्यसिद्धान्त, अमरचंद्रिका और प्रवोधचंद्रोदय-भापा। इन ग्रंथो मे सूरति मिश्र की साहित्य साधना को भावना और चिन्तन के स्तर पर पूर्णता प्राप्त हुई है। उन्होने ईश्वर-भक्ति को अपना लक्ष्य बनाया था और काव्यशास्त्र का विवेचन करके वे एक ओर काव्य-रचना के सिद्धान्तों से सम्बन्धित अपने चिन्तन को अभिव्यक्त करते रहे और उसके माध्यम से वे अपनी जीविका भी चलाते रहे।

सूरति मिश्र रीतिकाल मे उस समय पैदा हुए थे, जब अत्याचारो की नींव पर खडा किया गया औरंगजेब की सत्ता का भवन धराशायी होने लगा था। नादिरशाह के राक्षसी अत्याचारो के कारण चारो ओर भय और अनास्था का वातावरण छाया हुआ था। समस्त देश मे राजनैतिक अव्यवस्था पनप रही थी। साहित्यकार छोटे-छोटे राजाओ और अमीरो के महलो मे भी विलास देखकर आश्रय पाने के लालच में शृंगार-रस की कविताएँ लिख रहे थे। सूरति मिश्र ने अपने युग की चुनौती को स्वीकार किया। वे आश्रयदाताओं के यहाँ रहे, किन्तु ईश्वर-भक्ति और शास्त्र-चर्चा से आगे उनकी कविता नही गई। शृंगार के प्रेम-तत्व को तो उन्होंने अपनाया, किन्तु राधा-कृष्ण की भक्ति को उसकी सीमा बना दिया।

सूरति मिश्र के समस्त साहित्य के दो अग हैं—काव्य और काव्य-सम्बन्धी सिद्धान्त। काव्य के अन्तर्गत उनकी रामचरित, श्रीकृष्णचरित, दान-लीला, रासलीला, नखशिख और भक्ति-विनोद नामक कृतियो का समावेश किया जा सकता है। अलकारमाला, काव्य-सिद्धान्त, छदसारपिंगल, कामधेनु-कवित्त और रसरत्न की रचना उन्होने काव्यशास्त्र को सुबोध बनाने के लिए की है। उनका यही दृष्टिकोण जोरावरप्रकाश, रसगाहकचद्रिका, अमरचद्रिका-टीका एव रसरत्न-टीका के पीछे भी निहित दिखाई देता है। जहाँ तक प्रबोधचन्द्रोदय

भाषा का प्रश्न है, वह एक अनूदित रचना होने पर भी काव्य की सीमा मे ही आती है । वैतालपच्चीसी की रचना गद्य मे होने के कारण हम यह मान सकते हैं कि सूरति मिश्र एक गद्यकार के रूप मे कथा-लेखन के क्षेत्र मे भी प्रवेश कर रहे थे । उनकी यह कृति अपने समय मे पर्याप्त लोकप्रिय रही होगी, तभी लल्लूलाल ने उसका खडी बोली मे रूपातर किया एव उस नये रूप मे कई लिथो-मुद्रणालयो से उसका प्रकाशन हुआ ।

सूरति मिश्र मूलत एक कवि थे । काव्य के अन्तर्गत हमने जिन कृतियो का समावेश किया है, उनमे रामचरित, श्रीकृष्णचरित, रासलीला, दानलीला, आरम्भिक रचनाएँ सिद्ध हुई हैं । इन रचनाओ में सूरति मिश्र की ईश्वर-भक्ति का प्रबन्ध और मुक्तक दोनो शैलियो मे चित्रण सम्मिलित है । रामचरित मे उन्होने भगवान रामचन्द्र के शैशव से लवकुश-युद्ध तक की घटनाओ का वर्णन किया है । यद्यपि इस वर्णन मे घटना-परिगणन मात्र को स्थान मिला है तथा काव्य-गुण की दृष्टि से यह कोई महत्वपूर्ण कृति नही है, तथापि कवि की प्रबन्ध-प्रियता और उसके माध्यम से भक्ति-भावना की अभिव्यक्ति का प्रमाण मिलता है । श्रीकृष्णचरित मे वसुदेव और देवकी के घर भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म लेने से सुदामा की मैत्री और कुरुक्षेत्र मे व्रजवासियो से भेंट होने तक की मुख्य घटनाओ की सक्षेप मे चर्चा है । यह कृति भी काव्य-गुण की दृष्टि से सामान्य होने पर भी कवि के प्रबन्ध-कौशल और ईश्वर-विषयक प्रेम का परिचय देती है । दानलीला एव रासलीला कृतियो मे श्रीकृष्ण और गोपियों की विभिन्न सात्विक प्रेम-लीलाओ का मुक्तक शैली मे चित्रण किया गया है । इन दोनो कृतियो मे कवि ने विवरण देने की प्रवृत्ति का त्याग करके भावपूर्ण रोचक स्थलो के वर्णन मे तन्मयता दिखाई है । व्यजना-पूर्ण सम्वाद और विषय को प्रस्तुत करने की रोचकता के कारण इन दोनो कृतियो मे रामचरित और श्रीकृष्णचरित की तुलना मे काव्य-गुण अधिक मात्रा मे मिलता है । नखशिख मे राधा के चरणो से शिख तक का सौंदर्य मुक्तक शैली मे अलकार-सौन्दर्य के साथ भक्ति की पृष्ठभूमि पर चित्रित किया गया है । मिश्रजी ने अग-शोभा, उसमे वृद्धि करने वाले आभूषणो तथा दोनो के सम्मिलित प्रभाव का रोचक वर्णन किया है । भक्ति-विनोद मे उनकी काव्य-प्रतिभा को एक विस्तृत और व्यापक आयाम मिला है । रीतिकाल तक की समस्त भक्ति-काव्य धारा ने इस काव्य की भाव-भूमि को स्थायी सस्कार दिये हैं, इसलिए ईश्वर के सम्बन्ध मे कवि की आस्था और विश्वास का व्यापक चित्रण हुआ है और उसके माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की गहरी व्यजना मिलती है । रीतिकाल मे लिखे गये भक्ति-काव्यो मे विषय-प्रतिपादन, भाव-व्यंजना तथा अन्य काव्य-गुणो की दृष्टि

से इस कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। जीवन और प्रकृति के सौन्दर्य की मुक्तक शैली और आलंकारिक व्यजना-पूर्ण भाषा के माध्यम से अत्यन्त व्यापक रूप मे प्रस्तुत करने वाली भक्ति-सम्बन्धी यह रचना सूरति मिश्र को श्रेष्ठ कवियो की श्रेणी मे स्थापित करती है। इस कृति मे कवि का जीवन-दर्शन लोक और परलोक की विभिन्न व्यावहारिक भूमियों का गहराई से स्पर्श करता है, जिसके कारण भाव के क्षेत्र मे ही नही वैचारिक क्षेत्र मे भी सूरति मिश्र का कवि-रूप गरिमा के उच्चतम सोपानो तक पहुँचता दिखाई देता है। 'प्रबोधचद्रोदयभाषा' सस्कृत मे लिखित श्रीकृष्ण मिश्र कृत 'प्रबोधचन्द्रोदय नाटक' का रूपान्तर है, किन्तु उसमे भी कवि की काव्य-प्रतिभा और जीवन-दृष्टि–सम्बन्धी उच्चता परिलक्षित होती है। सूरति मिश्र के ये सभी काव्य सरल ब्रजभाषा मे लिखे गये हैं, जिसमे तद्भव शब्दावली के साथ देशज और तत्सम शब्दो को बडी निपुणता से स्थान दिया गया है। छद-रचना-सम्बन्धी कौशल का भी इन कृतियो मे अभाव नहीं है। दोहा, हरिगीतिका, कवित्त, सवैया आदि कई लोकप्रिय छंदो का कवि ने सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। भाषा और छद दोनो को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए कवि ने सहज ढग से उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, दृष्टान्त, काव्यलिंग आदि अर्थालकारों एव अनुप्रास, यमक, श्लेष आदि शब्दालंकारों को को अभिव्यक्ति का सफल उपकरण बनाया है।

कवि के रूप मे सूरति मिश्र का हिन्दी-साहित्य मे जैसा महत्वपूर्ण स्थान है, वैसा ही महत्वपूर्ण स्थान एक आचार्य के रूप मे भी उन्हे मिलना चाहिए। अलकारमाला, रसरत्न, कामधेनु-कवित्त, छदसारपिगल और काव्य-सिद्धान्त नामक कृतियों मे उन्होने अलकारो, रस–विवेचन सम्बन्धी आवश्यक तथ्यों, छदशास्त्र के प्रमुख प्रसंगों एव महत्वपूर्ण छदों के नियमो तथा काव्य-रचना के आधार-भूत सिद्धान्तो का संक्षेप मे सूत्रात्मक ढग से चित्रण किया है, जिससे उनके काव्यशास्त्र सम्बन्धी पाडित्य का परिचय मिलता है। यद्यपि उनके विवेचन मे सैद्धान्तिक मौलिकता अधिक नही है, किन्तु विषय को सरल, रोचक और सूत्रात्मक बनाकर प्रस्तुत करने एव स्व-रचित उदाहरण देने के कारण उनकी इन कृतियों का रीतिकालीन काव्यशास्त्र के क्षेत्र मे एक विशेष स्थान माना जाएगा। "बिहारी-सतसई" की "अमरचन्द्रिका-टीका" मे भी सूरति मिश्र ने अलंकारशास्त्र के गभीर ज्ञान का तो परिचय दिया ही है, साथ ही बिहारी के दोहो में मिलने वाले अलकारो के लक्षण भी यथा-सभव विद्वत्तापूर्वक प्रस्तुत किए है। बिहारी की भाव-व्यजना को अलंकारों के माध्यम से उसकी पूरी गहराई मे स्पर्श करने की अद्भुत क्षमता उस टीका मे व्यक्त हुई है।

"कविप्रिया-टीका" मे यद्यपि अधिक विस्तार नही है, केवल महत्वपूर्ण स्थलो की ही पद्य मे व्याख्या की गई है, तथापि उससे भी मिश्र जी की अर्थ-बोध-क्षमता और काव्यशास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान-गम्भीरता का प्रमाण मिलता है। इसी प्रकार "रसगाहकचन्द्रिका" मे पद्य मे केशवकृत "रसिकप्रिया" के गभीर स्थलो को सरल ढग से स्पष्ट किया गया है। "जोरावरप्रकाश" मे प्रवाह-पूर्ण साहित्यिक गद्य मे "रसिकप्रिया" को समग्ररूप मे विस्तृत व्याख्या का विषय बनाकर सूरति मिश्र ने काव्यशास्त्र को समझने तथा समझाने का जो प्रयास किया है, उससे केशवदास के विषय-विवेचन को काव्यशास्त्रीय क्लिष्टता और गम्भीरता की परिधि से बाहर निकलना पडा है। इस कृति के आधार पर सूरति मिश्र को हिन्दी गद्य के आरम्भिक निर्माताओ मे महत्वपूर्ण स्थान दिया जा सकना है। "रसरत्न-टीका" मे भी उसी गद्यशैली का सहज प्रयोग उनकी गद्य-लेखन-कला का परिचायक है और साथ ही साथ इस तथ्य का भी समर्थन करता है कि सूरति मिश्र काव्यशास्त्र-सम्बन्धी सिद्धान्तो को रचना के स्थान पर ही नही, व्याख्या के स्तर पर भी सरल ढग से प्रस्तुत करने की क्षमता रखते थे। सस्कृत से हिन्दी तक भारतीय काव्यशास्त्र की जो अखण्ड परम्परा विकसित होती आ रही थी, उसके पुरस्सरण और प्रस्तार मे सूरति मिश्र की प्रतिभा ने उल्लेखनीय योग दिया है। भरतमुनि से लेकर पडितराज जगन्नाथ तक के काव्य-सिद्धान्तो का तत्व खीच कर सूरति मिश्र ने जो विवेचन प्रस्तुत किया, वह अपने आप मे पूर्ण और प्रभावोत्पादक है। हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों की पक्ति से अलग बैठकर उन्होने काव्य-रचना के प्रमुख सिद्धान्तो तथा रस, अलकार और छद का विशेष रूप से जो चित्रण किया है, उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि काव्य के अंतरग गुण के रूप मे वे रस को महत्व देते थे और अलकार तथा छद को उसकी शोभा-वृद्धि के लिए आवश्यक उपकरण मानते थे। यदि ध्यान से देखा जाए तो विभिन्न काव्य-शास्त्रीय सम्प्रदायो के बीच से होकर निकलती हुई काव्य-सिद्धान्तो की अखण्ड धारा मे छद और अलकार से परिपुष्ट रस की ही सर्वाधिक स्वीकृति रही हैं और इस ऐतिहासिक तथ्य को अपनी कृतियो मे समाविष्ट करके सूरति मिश्र ने एक रसवादी आचार्य के रूप मे अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाया है।

हिन्दी साहित्य मे क्लिष्ट काव्यों की व्याख्याओ और उनके गूढार्थों का भावबोध कराने के लिए भी सूरति मिश्र की रचनात्मक प्रतिभा का सदैव स्मरण किया जाता रहेगा। जहाँ एक ओर उन्होंने हिन्दी मे उत्कृष्ट साहित्यिक गद्य लिखने का सूत्रपात किया और गद्य-भाषा को अभिव्यजना की प्रौढ़ता प्रदान की, वही दूसरी ओर उन्होने व्याख्या और गद्य-शैली के माध्यम से

अप्रत्यक्ष रूप मे हिन्दी-आलोचना की व्याख्यात्मक शैली को भी प्रस्तावित किया। "जोरावरप्रकाश" में टीका के माध्यम से उनकी आलोचना-प्रतिभा को भी पर्याप्त अभिव्यक्ति मिली है। गद्य मे ही नही अमरचन्द्रिका की गद्य-शैली मे भी कई स्थानों पर हमे आलोचना की तार्किक शैली का आभास मिलता है।

अत. सक्षेप मे हम कह सकते है कि हिन्दी-साहित्य के विकास में सूरति मिश्र का योगदान अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। उन्होने रीतिकाल मे उत्कृष्ट कोटि का शुद्ध भक्ति-काव्य लिखा है। शृंगार-रस की अभिव्यंजना को उन्होने सहज एव सात्विक प्रेम का आधार प्रदान किया है। प्रकृति के प्रति उनकी दृष्टि उन्मुक्त तथा सहज सौन्दर्य-ग्राहिणी रही है। जीवन के सामाजिक एवं सास्कृतिक पक्षो का उल्लास उनकी भाव-व्यंजना को गरिमामय बनाता है। काव्य-शास्त्र को सरल तथा सुबोध ढग से प्रस्तुत करके उन्होने कवियो के लिए काव्य-रचना का पथ ही प्रशस्त नही किया, अपितु काव्य की गम्भीरता तक पहुँचाने के लिए पाठको को भी सुगम साधन प्रदान किया है। उन्होने अलकार रस, छन्द आदि के नियम तो सरल शैली मे प्रस्तुत किये ही है, साथ ही स्व-रचित उदाहरण देकर अपनी अभिव्यक्ति-गत मौलिकता भी प्रकट की है। इस प्रकार काव्य और काव्यशास्त्र दोनो के विकास में उन्होंने समान रूप से योग दिया है। सस्कृत के श्रेष्ठ तथा लोकप्रिय ग्रन्थो के अनुवाद और हिन्दी के क्लिष्ट काव्यो की टीका करने की परम्परा को आगे बढ़ाने एव ब्रजभाषा-गद्य को साहित्य-रचना की सामर्थ्य से समन्वित करने के लिए भी वे सदा स्मरण किये जाते रहेगे। जब तक हिन्दी भाषा और उसका साहित्य जीवित है, तब तक सूरदास, मीरा, रसखान आदि भक्त-कवियों तथा चिन्तामणि, पद्माकर, मतिराम, देव, कुलपति, सोमनाथ आदि आचार्यों की पक्तियों मे उनका गौरवपूर्ण स्थान सुरक्षित रहेगा। साथ ही, हिन्दी साहित्य के अध्येता इस तथ्य को भी कभी विस्मरण नही कर सकते कि सूरति मिश्र हिन्दी-गद्य के निर्माताओ मे लल्लूलाल, मदल मिश्र, सदासुखलाल एवं इन्साअल्लाखाँ से भी पूर्व अत्यन्त आदर-पूर्ण स्थान पाने के अधिकारी है।

———

नख - सिख

नख–सिख

मंगलाचरण

चरन चतुर्भुज के चिह्न ह्वै करत सेवा,
रमा के सुखद गृह-रूप दरसात हैं।
आसन ह्वै विधि हू रिझायौ, पै न बनी विधि,
'सूरति' सुकवि वातैं जग में विख्यात हैं।
सुनिये हौ लाल ! उहि बाल-पग-समता कों,
कीनौं बहुतेरौ पै न भए वारिजात हैं।
ऐसी कौन, जाके हिय धीरज धिराइ वाके—
पाँइ देखे काहू के न पाँइ ठहरात हैं ।।१।।

जावक

किधौं सब जग की अरुनताई हारी
ताकौ आइकैं रजोगुन चरन अनुराग्यौ है।
किधौं पद-कंजनि कौ सेवति है गिरा वहै
पूर हित जाके देखे अंध-पुंज भाग्यौ है।
"सूरति" सुकवि जानि परी यह बात अब,
तोहि बूझिये न को हू मान-रिस पाग्यौ है।
जावक न होइ सुनि प्राण-प्यारी तेरे यह,
प्रीतम कौ अनुराग आइ पाँइ लाग्यौ है ।।२।।

१—ह्वै=होकर; विधि हू=ब्रह्मा को भी; वाते=उस कारण से; सुनिये हो लाल=हे लाल ! सुनिये ('ख' प्रति मे—सुनि पैहौ लाल पाठ है)। उहि=उस; धिराइ=धारण हो ('ख' मे 'थिराई' पाठ)।

२—ताको=उसका; पूर=पूर्ण, पाँइ= पैर, चरण।

पद–नख

चद-अनुहारि, छिनि रवि की अरुनताई,
जीते जोतिवंत, स्वच्छ रूप बिलसत है।

जेती जग नारि ते निहारि नारि नीची करै,
सबै ही कै प्रतिविम्ब तिनमे लसत हैं।

'सूरति' श्री बृन्दावन-मनी कौ चरन-सग,
पाइवे कौ विव आभावत दरसत है।

साँची कहनावति इहाँई देखी लाल, सबै—
जगत के रूप जाकै नख मे बसत है ॥३॥

एड़ी

कोमल अमल रुचि राजति रजत रूप
अति ही अरुन होत भूमि के परस तें।

मानों दरसत गति गजराज कुंज ते,
कुसंभ जल मेलि भरे चंदन सरसते।

जिनकी न उपमा को 'सूरति' बखानी जाति,
कहा कहौ आली कही आवतु तरस ते।

ऐसौ कौन चलि सकै डग भरि पंगु पंगु,
बेड़ी-सी परति तेरी एड़ी के दरस ते ॥४॥

३—छिनि = छीन कर; जेती = जितनी; नारि=स्त्रियाँ; नारि = गर्दन; पाइवे कों = प्राप्त करने के लिए; साँची=सत्य, इहाँई = यही पर, जगत के ('ख' प्रति मे 'जगन के')।

४—कही आवतु=कथन संभव होता है, परति=पड़ जाती है।

चरणांगुलि-भूषण

पायनि की अंगुली ए, संगु लिएँ सोभा सबै,
ढंगु लिये छीनि चंप कलिका वरन के।

अनवट मानौं काम-भट एक बंचक-से
परे है सुभाइ जिन्हे घाइल करन के।

महि या तौ व हिया सौ गहि राखै "सूरति" ए,
कैसे चले बाट बट्टु धीरज हरन के।

एते पै अनीति बढ़ी, देखत ही नेकु मारि—
मन कों विधाइयत बिछिया चरन के ।।५।।

अनवट

देखि तेरौ बदन मदन जब हारयौ मन
तब उनि ऐसे कै विचारि मत कीनी है।

जेती हतियारनि की सौंज हती गेह तेती,
सौपि सब दीनी तेरे अंगनि नवीनी है।

नैननि कौ सर, भृकुटीनि को धनुष भाव,
तीछन कटाछ असि भाव फाँसी लीनी है।

अनवट होंहि ना ए, वाहि समै काम नै
अँगूठनि कौ कंचन की ढालै सौपि दीनी है ।।६।।

५—पाँयनि की=पैरो की ('ख' प्रति में चायनि की); परे है=पड गए हैं, सुभाइ=स्वभाव, यातौ=चलते हुए, विधाइयत "ख" प्रति में विछाइ-यत है।

६—जेती=जितनी, भाव=भौ, हो गया। भाव=मनोभाव, ए=ये, वाही=उसी।

नुपुर

झूमति रानी चलै जब ही, तब
वैस पै रीझ के फूल विढारिये।

देखत गाइक वेलि उठे
जिनके कल गान सु बोल उचारिये।

"सूरति" है किधों जीति के वाजन
और कहा उपमा यों विचारिये।

जेती कछू छवि है इहि भू पर
तेरे ही नूपुर ऊपर वारिये ॥७॥

पाइजेब

किधौं रतिरानी उर हार पीत फूलनि के,
किधौ कदली के अंग कचन की वेलैं है।

किधौ कमला के गेह बाँधी अति सोहति है
पीत मनि-तोरनि, उठति छवि रेलै हैं।

'सूरति' सुकवि छवि कहाँ लौ बखानो नेकु
देखत ही एरी मन सबके सकेले है।

तेरे पाँइ परी ए न पाइजेव आली किधौ
गति गजराज, गरे हेम की हमेलें हैं ॥८॥

७—'ख' प्रति मे 'यों रतिरानी चलै' प्रथम पक्ति का आरंभिक पाठ है। तृतीय पक्ति मे "बाजन" के स्थान पर "गाजन" है। जेती=जितनी, इहि=इस, वारिये निछावर कीजिए, तुच्छ है।

८—गरे=गले,

जेहरि

किधों रति-पति रची गति गजराज पैं ए
हेम की अँबारी सम धारी सुविचारि कैं।
किधौ तन-मंदिर में आभा चढ़िवे की सिढ़ी,
कीनी काम कारीगर कंचन सुधारि कैं।
'सूरति' बनी है तेरे पग पैजनि की सोभा,
कहा हौं बखानों कही जाति न उचारि कैं।
जे हरि सकल जग-मोहन कहावत है,
ते हरि तौ मोहे तेरी जेहरि निहारि कैं ॥९॥

गति

जब तूँ चलति धाइ धरनि धरति पाँइ,
नहि लखि पाइ, कौन धीरज धरतु है।
जिनकी चलनि को बखान कवितानि कहै
तिनको तो चित्त पृहा-दाहनि मरतु है।
एक भागि जात मानसर मान भंग जानि
एक रज डारि सीस धुनिवो करतु हैं।
ए री ब्रज-बाल गजराज औ मराल तेरी
सुनत ही चारु चालि चालनों परतु है ॥१०॥

कटि

चंदन के फूल जैसे काहू न 'निहारयौ कहुँ,
जो पै मही, तो वौ कैसें फल दिखरात हैं।
देहिनि में सकति निहारि न सकत कोऊ,
होइ न तौ कैसे जीव क्रिया जुत गात हैं।
मदन अनग कै अनंगी विधि कीनी यह,
'सूरति' जगत मोहिवे कौ अधिकात है।
सूझै मनि-पट, कोऊ देखे न प्रगट,
तेरी कटि सुने सब ही के मन कटि जात है ॥११॥

९—सिढी=सीढ़ी, कीनी=बनाई, कि=या, हौ=मै, ते=वे,

१०—पृहा=स्पृहा।

११—दोहिनि=शरीर-धारियो, जुत=युक्त, कैं=करके, कटिजात है=कट जाते हैं, मुग्ध हो जाते है।

त्रिवली

किधौ मनमथ के ए रथ के सुचक्र चले,
तिनकी की लीके उर भू पै जानी तौन है।

किधौ मैन ठग की ए गली भली ठगिवे की
किधौ रूप-नदी तीन धार कियौ गौन है।

"सूरति" सुकवि देखि मोहे मन मोहन जू
याते मै हूँ जानी, एई मोहिवे के मौन हैं।

एक वली सव ही कौ वस करि राखतु है,
त्रिवली करै जो वस अचरज कौन है ।।१२।।

रोमराजी

किधौ यह पान पै वसीकरन मन्त्र लिख्यौ,
देखि छवि मोहै कोऊ विद्या पंचसर की।

हृदय-सरोवर सिगार-जल भरयौ कैधों,
उमड़ि चल्यौ है नाभि-कुंडिका गहर की।

छोटे-छोटे आखरनि अवला लिखाए ये तौ,
अपनी सवलताई "सूरति" समर की।

जिने देखे नैंननि की गति-मति भाजौ यह,
तेरी रोम-राजी किधौ वाजी वाजीगर की ।।१३।।

१२—लीके=लकीरे, पहियो के चलने के चिह्न, गौन=गमन वली=वलवान।

१३—देखि छवि='ख' मे देखत ही, आखरनि=अक्षरो मे। यह छद सरदार कवि के शृंगार-संग्रह मे भी सकलित किया गया है।

उरोज

किधौं हारि सरवर पार चक्रवाक बैठे,
जामे-निसि देखे मुख रजनीकरन के।
किधौ हेम-लता बीच आनन्द के फल दोऊ,
लागि रहे हठि काम आयत रहन के।
किधौ द्विभुवन जीति समर समर घरे,
उलटि निवारे छबि "सूरति" घरन के।
देखत ही अंग अंग व्यापत मनोज आली,
तेरे री उरोज कि सरोज सुबरन के ॥१४॥

हाथ

किधौ है रसाल दोऊ कर कमलनि सम,
जिन्हे देखि नन्दलाल धीरज नही गहै।
रतन जड़न की अँगुली मे अनूठी देखी,
छलौ को न छला आरसी सो आर-सी वहै।
धौरे-धौरे पीरे हरि महँदी के रग बीच,
तिन की निकाइ कवि "सूरति" सु को कहे।
कहा कहौ गाथ वाकौ रतिनाथ साथ कीन्है,
तेरे हाथ देखि कौन हाथ अपने रहै ॥१५॥

कर-भूषण

जौतिनु सौ मौतिनु के गजरा जु राजे ते ए—
मनु गजराजु गति राखे तरु धारि कैं।
देहि कै रतन चोक चौकस रहे सु को,
जड़ सम होइ सुधि बुधि हू विसारि कै।
तेरे कर भूषणानि मोहे व्रजभूषन जू,
"सूरति" हौं भेद कहा कहौ विसतारि कै।
कवन तो संकन करत मोहिबे में अरु,
पहुँचै को घर तेरी पहुँची निहारि कै ॥१६॥

१४—जामे-निसि=दिनरात, समर-समर=काम देव ने युद्ध में।

१५—छला को न छला=छला (आभूषण) ने किसे नही छला या छला के द्वारा कौन नही छला गया, धौरे-धौरे=श्वेत-श्वेत, गोरे=गोरे, निकाई=सुन्दरता।

१६—जोतिनु सो ज्योतिषियो से, चौकस=सावधान।

कर-भूषण

किधौं सतधार है कालिन्दी परिक्रमा देति,
रमा कंज जानि तानौ ऊरध सुहित कौं।
किधौ नीलपट्ट माहि कसी कमलनि-सोभ,
कैं सरोज वसैं रास रस कियौ तितकों।
'सूरति' सुकवि छवि कहां लौ बखानौ कैसी,
गोरे कर राजै स्याम रंग लै अमित कौ।
एरी चंदमुखी मेरे चिंतामनि चातुर को,
तेरी चारु चूरु ए चुराए लेति चित्त कौ ॥१७॥

भुज-मूल

तेरे भुज मूल जिन्हें उपमा न तूल, देखें
होति, अति भूल, सधि जाति उठि गात ते।
वाँह से उतारि देखि रीझै हरि प्यारे सुर,
तरु मद डारे, डारे तेजु करि घात तै।
"सूरति" सुकवि किधौ फाँसी मनमथ जूकी,
तामें अचरज एक बड़ौ इहि बात तै।
जो न गरै परै तौ तौ प्राननि कौ हरै अरु,
गरै जव परै तब राखै प्रान जात तैं ॥१८॥

पीठ

किधौ यह केस लैंके रस को नरेश वारण,
देख री सुदेस सुठि सोभा रसभीनी है।
किधौ यह मदन की पाटी मंत्र पढिवे की,
"सूरति" सुकवि वनी हाटक नवीनी है।
जीवन के मन्दिर की भाँति हेम ढारि किधौं,
रुचि सो वनाइ राज रति राज कीनी है।
ऐरी मेरी तेरी यह पीठि .नेक दीठि भरि,
देखि भई ईठि सव ही को पीठि दीनी है ॥१९॥

१७—चूरी=चूड़ी।

१८—तूल=समात, जाततें=जाने से, नष्ट होने से।

१९—सुठि=सुन्दर, नेंक तनिक।

ग्रीवा

कंबु औ कपोत होत कैसे बापुरे ए सम,
 या में छिन-छिन छबि नई सरसति है।
सोभा की तिरेख तापें सोहति विसेष मानौ,
 सुरनि के गननि की पाँति बिलसति है।
"सूरति" सुकवि जीति तिहुँ लोक छबि,
 तिन की ये मानौ रेख कीनी तेई ए लसति है।
सुनि प्रानप्यारी कछु झूठ न कहत सब,
 छबिन कै सींवा तेरी ग्रीवा में बसति है ॥२०॥

तिल

एरी सुखदाई तेरी चिबुक की स्यामताई,
 ताकी उपमा की कवि-कुलकें रढ़नि है।
किधौ कंज कोरे लागि रह्यो है मधुप-सुत,
 भूल्यौ रस-मत्त होति कैसे कै कढ़नि है।
किधों चंद अंग निसि-अंजन की बूँद सोहै,
 "सूरति" चकोर देखि सुख की मढ़नि है।
अचरज बड़ो आली तिल तौ है तेरे अंग,
 स्याम जू के नैननि में नेह की बढ़नि है ॥२१॥

मुख

तेरी मुख समता कों एक मिल्यो सविता कों,
 एक विधि मिल्यौ, विधि ग्रन्थनि बतावहीं।
एक सेयौ सिन्धु एक सिधु की सुता कों सेयो,
 सुर अलि पोखे दान देखे जो जनावही।
"सूरति" यो दोऊ बहुतेरो करि हारे सुनौ,
 एहो ब्रजरानी बानी सब जग गावहीं।
पैज बाँधी, सधी नहिं यातें चंद कंज देखी,
 आज हुँ लौ, आपुस में मुख न दिखावहीं ॥२२॥

२०—तिरेख [illegible] गीवां=सीमा।
२१—रढनि [illegible], कढनि मुक्ति, [illegible]
२२—पैज [illegible] सधी नहिं=पूरी [illegible]

अधर

जीत्यौ मधुराइ ते सु धाइ सुर-लोक छिप्यौ,
ऊप औ मयूप कों, सु छिपे हैं, अरनि मे ।
देखत ही विद्रुम भए हैं जड़ रूप अरु,
बिम्ब मति-हीन भए जिनकी दरनि मे ।
पान रग पातर्यो भयो है तब ही ते यह,
एरी ब्रजरानी अब रह्यो को सरनि मे ।
'सूरति' सुकवि तिन्हे सकै को बरनि प्यारी,
तेरे अधरनि कों न उपमा धरनि मे ॥२३॥

दसन

किधौ मुख चन्दे कला वरी है छिपाइ देखि,
दूनी द्विजराज हिये सहै ताप भारे है ।
हिरन की पाँति हेम सपुट मे धरी किधो,
पूजाहित रमा द्विज रोह बयठारे हैं ।
सुधा पिये जिये प्यारी बोल सुनि लिये ही तें,
यही ते विचार कवि, 'सूरति' विचारे हैं ।
तेरी रसना मे कोऊ अद्भुत अमृत बसै,
मानो ताके आसपास बैठे रखवारे है ॥२४॥

रसना

किंधों विधि रचना की रची है कसौटी यह,
अरुन बरन अचरज मन है रह्यौ ।
किंधौ तेरी बानी ठकुरानी मनमानी ता की,
राती फूल सेज रग जात न कछू कह्यौ ।
'सूरति' सु किधौं बोल रतन अमोल दान
दे दे सब ही को सुख दुख सब ही दह्यौ ।
नेक हू बखानि सकै काहू को सु बस ना जु,
रस तेरी रसना सु रस ना कहूँ लह्यौ ॥२५॥

---

२३ ते-वह, धाइ=दौडकर, ऊप=गन्ना, मयूप=शहद
अरनि, अरण्य, जगल । सरनि-समता ।

२४. बयठारे=विठाए है ।

२५ 'हेरह्यो' के स्थान पर "स" प्रति मे 'गह रह्यो' है ।
सु बस ना=ऐसी सामर्थ्य नही ।
यह छद सरदार कवि शृंगार-सग्रह मे भी सकलित किया गया है ।

हँसी

किधौ चद बीच कोउ दामिनी दमकि उठे,
देखि मोहि भूली सुधि, तुक कैसे रखि है।
किधौ रवि दीनी एक कला सखा आपने कौ,
सोई उठे चमकि सु देखे लीक नखि है।
'सूरनि' सुकवि छबि देखत ही लाल फेरौ,
आपने औ पर तुम कोहू न परखि है।
नैक ताकी बोलनि लखे तो तन फांसी भई,
हाँसी मोहि आवै बाकी हांसी कैसे लखि है ।।२६।।

नोट—यह छद सरदार कवि के श्रृंगार-सग्रह मे भी सकलित किया गया है।

बानी

जाको एक अंस हंसबाहिनी प्रससति है,
किन्नरी सु कौन जाकी नेकौ सर करि है।
और कोकिला सौ को कला हू एक जाने नाहि,
'सूरति' सुकवि गनती मै कौन धरि है।
बीना बेनु तब लौ बजाइ लीजै प्यारे लाल,
फेरि तुम्हें आन हूँ को चरचा विसरि है।
सुधि बुधि सकल हिरानी जैहै जानि हूँ यों,
कहूँ मेरी रानी जू की बानी कान परि है ।।२७।।

कपोल

तेरे ये कपोल बाल अति ही रसाल, मन-
जिनकी सदाई उपमा विचारियत है।
कोऊ न समान जाहि कीजै उपमान अरु,
बापुरे मधूकनि की देह जारियत है।
नैक दरपन समता की चाह करी कहूँ,
भए अपराधी ऐसै चित्र धारियत है।
'सूरति' सु याही तै जगत बीच आज हू लौ,
उनके बदन पर छार डारियत है ।।२८।।

---

२६ लीक=रेखा, नखि हो-पार करना। आपने औ पर=अपना और पराया। बोलनि बोलने का ढग।

२७. नेकौ थोडी भी, कौ-कौन, कुछ नहीं। कलाहू कला भी।

२८. मधूकनि="ख" प्रति मे मधुकनि। याही ते=इसी से।

नासिका

तरुनि की नासिका को सोभा वरनी न जाइ,
जाकी समता के रूप कोऊ न पढत है।
किधौ मन-मीननि की वर्मी वसींघर की सो,
किधौ चंद पूज्यो नित फूल यों रहत है।
'सूरति' सुकवि उपमा न जाहि धरनी मे,
एक मन आई देखि आनँद वढत है।
काम तरकस मानी उलहि घरयो है पर,
अचरज वड़ो तीर कहाँ ते कढ़त है ॥२९॥

नथ

किधौ पिय नेह मनी कीरति हँसनि लेकैं,
डुले हेम डूले भूले ध्यान समरथ के।
किधौं मन प्रीति-मतंग गहिवे की फँदी,
जामें फँसि हूजे हाथ साथ मनमथ के।
ऐसी भाँति देखि एरी मोहे मनमोहन जू,
कहाँ लौ वखान करों, 'सूरति' अकथ के।
वूझै ग्यान गथ के औ लोक लाज पथ के सु,
का के नैन धीरज निहारैं तेरी नथ के ॥३०॥

नेत्र

कमल अमृतावान भँवरादि ठाए नौं,
इनमे जो वडी ये वड़ाई मे पगत है।
कमला के कमल औ चन्द्रमा के रथ मृग,
मदन के मीन एहु चित्रनि खगत हैं।
वनमाली जू की वनमाला के भँवर कवि,
'सूरति' निरखि जिन्हे आनँद जगत है।
इन से हैं नैन ऐसो कौन कहे वैन सुनों,
प्यारी जू के नैननि से ए कछू लगत हैं ॥३१॥

---

२९ पर=परन्तु, कहाँते=कहा से।

३०. हूजे=हो जाइये, का के=किसके।

३१. ठाए नौ=जव तक रुके हो। कछु=कुछ।

अंजन

किधौ देखि दृग छबि अति ही अनूप जल,
रूप ह्वै सैंगार पर्यो धारा दुति सोह्यौ है ।
किधों यह गरल कटाक्ष-सर लाइबे कों,
'सूरति' निकट नयननि अवरोह्यो है ।
एरी ब्रजरानी तेरे रस-मय भयो कान्ह,
ऐसौ कोऊ वस कहूँ सुन्यों औ न जोह्यौ है ।
सब दु:ख भंजन कन्हाई मन-रंजन सु,
तेरे इन अजन निरंजन को मोह्यो है ।।३२।।

नेत्र-भाव

भूपति है प्रेम लाल डोरे है निसांन तेई,
चचलता विविध तुरग भीर भारी है ।
देखिबो अनेक भाँति तेई असवार, रेख,
काजर की हाथिनि की कोर सी सवारी है ।
वरुनी चंडूकनि की पाँति सी लई है पिय,
विरह मरोरिवे की अ ंग पैज धारी है ।
'सूरति' सुकवि सेत स्याम रंग बाने वने,
प्यारी तेरे नैननि में नीकी असवारी है ।।३३।।

वरूनी

किधौं दृग-सरवर आसपास स्यामताई,
ताहि के ए अ ंकुर उलहि दूने बाढ़े है ।
किधौ प्रेम वयारी जुग ताके चहुँधा रची हैं,
नीलमनि सरनि की बाढ दुख डाढ़े है ।
'सूरति' सुकवि तरुनी की वरुनी न हों हि,
मेरे मन आए यों विचार चित गाड़े है ।
जेई जे निहारौ मन तिन के पकरिवे कों,
देखो इन नैननि हजार हाथ काढ़े है ।।३४।।

---

३२. सैंगार=श्रृंगार, लाइवे को=लगाने के लिए, जोह्यौ=देखा ।
३३. बाने=वेश ('ख' प्रति में+'पागे' शब्द है, जिसका अर्थ 'पगड़ियाँ' हो सकता है)
३४. उलहि=निकलकर, बाढ-घेरा, जेईजे-जो जो ।

भृकुटी

भृकुटी निहारि को सँभारि सके धीर गहि,
किधौ कज बैठी अलि पाँति मोहै मति है ।
किधौ मीत चद को सुन्यौ है राहु-भय, काम,
जाते दीनो धनु हिय माँझ अति रति है ।
'सूरति' सुकवि हाव भाव फल बेलि किधौं,
कहाँ लो वखानो छवि कही न परति है ।
सोहनि ही खाति एरी, जोहनि मे देखी कहू,
मोहनि की रीति तेरी भौंहनि में अति है ॥३५॥

श्रवण

किधौ ए मदन राज सदन की ड्योढी किधौ,
भाजन है पिय रस पान आछे सव ते ।
किधौ चित दृग भूप रूप है, अनूप सुनि,
सवहि जनावे तिन्हे रहे अगरव ते ।
आली वनमाली जू की वात कहा कही कछु,
'सूरति' सुकवि और रीति भई तवते ।
भूले है गवन औ सुहात न भवन तेरे,
श्रवन की सोभा परी श्रवन मे जव ते ॥३६॥

भाल

किधौ भाल भूपति को कंचन तखत अरु,
पर्‌यौ है लाल सोमा पुंज वरसत है ।
अरुन हरित पीत स्याम सित पंच रग,
वेदी वनी मोहनि मे भाव सरसत है ।
मानो अर्ध चद मधि सवै ग्रह आइ वैठे,
'सूरति' सु अग-अंग रूप दरसत है ।
जैसे सव देह की अवस्था नाटिका मे तैसें,
सवै गुन रूप तेरे भाल मे वसत है ॥३७॥

---

३५. गहि=पकडकर, माँझ मे, सोंहनि=शपथे, जोहनि मे=दृष्टि मे, देखने मे ।

३६. अगरवते=अगर्व से, गर्व त्याग कर, गवन=गमन ।

३७ भाल के स्थान पर 'ख' प्रति में 'भाग' शब्द है ।

अलक

मानों एक लक दुहुँ दिसि माँहि बैठ आइ,
अलिनि की पाँति गति मन को ठगति है।
किधौ चद डारी दोऊ ओर फाँसी गहिबे कों,
लोचन सरोजनि के दुहुँ धा अगति है।
किधौ सुधा-सर जानि आए अहि बालक ये,
'सूरति' निहारि मति सवकी पगति है।
जिनमें मकल जग सोभा आइ झमके सु,
देखि तेरी अलकें न पलकें लगति है ॥३८॥

केश

किधौ तन-पानिप को सोहत सिवार पुंज,
किधौ चंद पाछो आइ घेरयो तमु अरि है।
किधौ मन-पंछी गहिवे को मखतूल जाल,
मदन वनायौ फँसि जामे को निकरि है।
'सूरति' ए ऐसे, वह साँवरौ रसिक बड़ौ,
देखिवे की जक लागै धीरज न धरि है।
कारे सटकारे ए तू बार-बार छोरति है,
तेरे वार देखे कान्ह मेरे बार परि है ॥३९॥

माँग

किधौ जमुना कैं पूर बीच गंगाधारा बही,
किधौ तम चीर्यो रविकर आइ डारे तैं।
किधौ रसराज के सरोवर मे चली वग,
छोननि की पाँति उत-इत के किनारे तैं।
'सूरति' छबीली ह्वै छलके, छबीली देखि,
और वसिकर कहा करि हौ विचारे तैं।
व्यापि जाइ विनु आँग, वारौ आँग आँग मन,
राँग सौ ढरतु तेरी माँग के निहारे तैं ॥४०॥

---

३८. डारी=डाली, गहिवे कों=पकड़ने के लिए, दुहुँधा=दोनों ओर।
३९. पाछो=पीछे का भाग, जामे=जिसमें, जक=हट, वार देखे बाल देख कर।
४०. छोननि=शिशुओ, इत-उत=इधर-उधर के।

वेनी

त्रिभुवन पति के हरित दुख देखत ही,
सहज सुवास ऊँचे वास सोम रस है।
कोमल, सनेह सनी सुख वरसावै नित,
तीन हू वरन को प्रकट सु दरस है।
सव दिन एक सौ महातम है, 'मूरति' यों,
नागर सकल सुख-सागर परस है।
ऐरी मृग-नैनी पिक-वैनी सुख-दैनी अति,
तेरी यह वैनी तिरवैनी ते सरस है ॥४१॥

इति श्री सूरति मिश्र विरचितं नख-सिख वरननं सपूरन। लिखितं सीतारामेण भाद्रमासे शुक्ल पक्षे दुतिया संवत १८७५ वि० ॥श्री॥शुभम्॥

---

४१. 'ख' "प्रति मे कोमल……… " नित" पक्ति नही है। तै से।
बीकानेर वाली 'ख' प्रति की पुष्पिका—"इति सूरति कवि कृत नखसिख वर्णन"।

रास - लीला

रास – लीला

दोहा

ब्रजरानी ब्रजराज के, चरन-कमल सिरनाइ ।
ब्रज लीला कछु कहत है, लखी दृगनि जेहि माइ ।।१।।

भादव सुदि छठ के दिना, संतन कुन्ड अन्हाइ ।
सतन संग सब जात री, बसत करहला जाइ ।।२।।

तहाँ पाछली निसि लख्यौ, इक मंडल पर रास ।
दपति छवि सपति निरखि, को कहि सकैं विलास ।।३।।

कवित्त

लाडली के सीस पर चन्द्रिका विराजै अरु
लाल कै रसाल मोर मुकुट विलासु है ।
नीलपट पीत अरु भूषन जटित नग
जापै वारि डारौ कोटि भानु को प्रकासु है ।
'सूरति' सुकवि नृप भेद गान तान लेख,
वाजत मृदंग ताल धुनि की हुलासु है ।
सुख कौ निवासु जहाँ परम सुवासु, बड़े—
भागिनि की रास ही सौ देख्यौ आजु रासु है ।।४।।

इति षष्टी विलास

---

४. यह छंद 'भक्तिविनोद' मे भी संख्या १४० पर है ।

प्रात होत उठि और थल, इक मडल पर आइ ।
झूलत जुगल किसोर जू, सो छवि कही न जाइ ।।५।।
ता पाछै मडल सु इक, कृष्ण कुंड के पास ।
लीला रची विवाह की, आइ तहाँ सविलास ।।६।।
यह लखि कुंड अन्डाइ कै, सातै तिथि सुभ जानि ।
पहुँचे वरसाने सबै, सुख सरसाने आनि ।।७।।
दरसन श्री ब्रषभानु के, लहै परम अभिराम ।
श्री कीरति राजति जहाँ, सुत समेत जिहि धाम ।।८।।
तहँ ठाठी लीला लखी, रैनि पाछिली माहि ।
गोप बस वर्णन सुन्यौ, यह सुख कितहूँ नाहि ।।९।।
जन-पंकज ठाठी लखै, गाढी प्रीति विशेषि ।
सब कै हिय बाढ़ी भगति, ठाठी ठाठिनि देखि ।।१०।।

इति सप्तमी विलास

प्रात होत उहि गाँव मे, बाजे बजै अनत ।
प्रात लाड़िली को जनम, कौतिक निरखत सत ।
जहाँ-तहाँ निरतत सबै, गावत गीत रसाल ।
दधि हरदी भीजे फिरे, तरुन वृद्ध अरु बाल ।।१२।।
मंगल श्री ब्रषभानु घर, अद्‌भुत निरख्यौ मित्त ।
सब कै परमानंद तहँ, 'सूरति' पढ्यो कवित ।।१३।।

कवित्त

प्रकटि कुँवरि ब्रषभानु जू के गेह तेज,
कौटि ब्रषभानु के से देखे हरसाने में ।
चौदह भवन मे कवन जो न आए ब्रज,
रहे न गवन विनु जेऊ अरसाने में ।
'सूरति' मनोरथु सफल जाँचि कीने अरु,
दुरयौ बसु देती भूलि राव्यौ न रसाने मे ।
सुख करसाने गौप ओप सरसाने आजु
आनँद के मेह वरसाने वरसाने मे ।।१४।।

---

७. अन्हाइ=स्नान करके ।
१०. ठाठी=ठाठ (अभिनय) करने वाला ।
१२. निरतत=नृत्य करते है ।
१४. यह छंद 'भक्तिविनोद' मे भी संख्या १३३ पर है ।

दोहा

बहुरि लाड़लो-लाल की, लीला लखी अनूप ।
मदिर तै बाहिर निकसि, बैठे जुगल सरूप ।।१५।।
भाँति-भाँति गुन-गान तहँ, नृत्य होत बहु भाइ ।
सम्मुख दरसन जुगल छवि, देखत मन न अघाइ ।।१६।।
भादौ सुदि तिथि अष्टमी, यह सुख लख्यो अनूप ।
तहाँ वनौ झर न्हाइ कै, भए आनंद सरूप ।।१७।।
वहुरि तहाँ संध्या समै, भयौ दान गठ रास ।
सफल जनम कीनो सबनि, निरखत जुगल विलास ।।१८।।

(इति अष्टमी विलास)

प्रात होत नौमी तहाँ भौ विलास गठ रास ।।
भोर कुटी ऊँचै बहुरि कियो नृत्य सविलास ।।१९।।
गह्वहर वंन नीचै महा, लखत तहाँ तै लोग ।
यह सोभा लखि पाइये, जुगल कृपा के जोग ।।२०।।
तरु तै फैकत मोदकनि, जुगल रूप इक बार ।
परत आन जन वृंद पर, कौतुक सुखद अपार ।।२१।।
फेरि तहाँ तैं उतरि कै, रास मंडलहि आइ ।
गह्वर वन मे रास प्रभु, कियौ परम सुखदाइ ।।२२।।
फिरि वाही दिन प्रेम सनि, चले रास के हेत ।
प्रथम लख्यौ मारग विषै, परम धाम संकेत ।।२३।।
नंद ग्राम पुनि दरसि कैं, दरसे बाबा नद ।
श्री जसुदा, बलदेव, हरि दरसत भयो अनद ।।२४।।
तिनके सम्मुख ह्वै तहाँ, अति आनंद लहि चित्त ।
जन्म बधाई के तहाँ, 'सूरति' पढ़ै कवित्त ।।२५।।

कवित्त

आजु ब्रजपति के वधाई मन भाई आई
रिद्धि सुखदाई सबै सुख में पगत हैं ।
जनम्यो है वालक, अखिल लोक-पालक है,
जाके भये दीननि के दारिद भगत है ।

'सुरति' सुदान को प्रमान हो, वखानो कहा,
गुनी ले कै चले जेती सपति जगत है।
मग मे जे मिले और भूपति के धोखे तैं वे,
नद जू के याचक पै जाचन लगत है ॥२६॥

व्रज परमानद को कौन परमानद है
देखि परमानद की परम सुहाई है।
'सूरति' सु धन देकै धन दै लजायो, कहै—
धनि दै असीस, जेती गुनी पाँति आई है।
दीनी वृषरासि वृपरासि के उदय हित
बाढी वृपरासि लोक लोकनि मे गाई है।
गोकुल द्विजनि पाई, गोकुल गनै न जाई
गोकुल कहै हो आजु गोकुल वधाई है ॥२७॥

दोहा

पढि कवित्त परनाम करि, चले जाववट धाम।
तहाँ रैनि पछली लख्यौ, रास परम अभिराम ॥२८॥

कवित्त

जुगल किसोर चित चोर दूत और दोऊ
निर्तत री नट बेश छवि को प्रकासु है।
वाजत मृदग औ अपग मु ह चंग संग
रग सुभ ढग जहाँ परम विलासु है।
'सूरति' सुवानक अचानक वन्यौ है आनि
दानन के भाग देख्यौ मानक निवासु है।
पाछैं रहि तिन्है हम लियैं सग ऐहे, तुम—
जाउ वट माही आजु जाउवट रासु है ॥२९॥

---

२६. यह छद भक्तिविनोद' मे सख्या १३० पर है।
२७. यह छद 'भक्तिविनोद' मे सख्या १३१ पर है।
२९. निर्तत=नृत्य करते है।

दोहा

तहाँ सु वा बट के निकट, लख्यो प्रगट सुख-रूप
प्रात कोकिला वन लख्यौ, 'सूरति' परम अनूप ।।३०।।

इति नवमी विलाल

कवित्त

निपट सघन कुंज पुंज गुंज भौरनि कौ
ठौर–ठौर लता झूमि रही है हुलास में।
सेत स्याम फूल डहडहे फूले चहुँ ओर
मानो बहु नैंननि सों देखै वन पास में।
'सूरति' सुकवि स्यामा स्याम दौऊ राजै मध्य
नृत्य–गीत–मोद होत परम विलास में।
ऊँचे सुर गावै व्रजलाल वे रिझावैं मानौ
कोकिला ए बोलैं कोकिला वन रास मे ।।३१।।

दोहा

भादौ सुदि दसमी तहाँ, लखि कै यह सुख रास ।
दुपहर लौ आए जहाँ, बाबा नन्द निवास ।।३२।।
नंद गाम परसाद लहि, आए वन संकेत ।
लिखै हिडौरा झूलते, दोऊ सखिन समेत ।।३३।।
मान मदिर हि लखि लख्यौ, सज्या मंदिर चारु ।
बहुरि रास निरख्यौ तहाँ, सकल परम सुख सारु ।।३४।।
सार निरखि संकेत बट, कर प्रणाम सब लोग ।
बरसाने आए बहुरि, लहै परम सुख जोग ।।३५।।
रैनि समै अति चैन में, भयौ मान गढ रास ।
बहुरि तहाँ लीला भई, अद्भुत सहित विलास ।।३६।।

इति दसमी विलास

———

दान - लीला

दान – लीला

दोहा

प्रात साँकरी खोर पै, लीला भई अनूप ।
एक ओर ब्रज-लाड़ली, एक ओर ब्रज-भूप ।।१।।
भई दान-लीला तहा, वचन रचन बहु भाइ ।
कृपा लाडिली-लाल की, तो सुख निरखै आइ ।।२।।

सवैया

"देहु जू दान जौ या मग जाति हौ"
"काहे कौ दान हमें न सुनावत ?"
"जानति हौ ए सखी ! तुम ही कहौ"
"लेत है ते नहि आपु बतावत ।"
"सूरति कौन आपु कहौ ?" "हम—
दानी सुने न ? सबै ब्रज गावत ।"
"रीति तिहारी सुनी उलटी एजू
माँगत दान औ दानी कहावत ।।"३।।

कृष्ण-वचन

मौन ते आछे ही सो न चले हम
कौन के पास इतौ दधि पै हैं ।
"सूरति" सग सखा जितने सब
गोरस ही सों बनाइ अघै है ।
बात बनाइ बनाइ कहौ, हम—
हू बहु वातनि कौ समझै हैं ।
दान लिए बिन पै न सुनौ हम
लौटि कै गोकुल गाम कौ जैहैं ।।४।।

---

४. आछे ही सों=अच्छी तरह, अच्छे मुहूर्त मे । बनाइ=पूर्णतः । अघै है=सतुष्ट होंगे ।

गोपी-वचन

ए जू जाचत दान सुने द्विज है
तुम गोप के बेस, सबै जग गावत ।
कै कोऊ दीन ही लेत, तिहारे तो–
नौ निधि नद के गेह बतावत ।
'सूरति' गोरस की कहियै कहा, दास
औ दासी गलीनि वहावत ।
ऐसे कहाइ कै माँगत हो तुम
गोकुल सो कुल काहे लजावत ।।५।।

कृष्ण-वचन

सोरठा

तुम समझी जो दान, सो न दान यह आन कछु ।
कर लागत इहि थान, कर लागत इत छूटि हौ ।।६।।

गोपी-वचन

आगै कछू दान हम सुन्यों है न कान, तुम–
जाचत सयान भरे, नेक न सकात हौ ।
कोऊ सुनि ऐहै तव सव सुधि जैहै, एक–
ऊतरु न ऐहै भए ढीट बतरात हौ ।
'सूरति' सुकवि हम जानि मन आनि यह
भये नये छैल यातै अति इतरात हो ।
ए हो नंदलाल छाजौ अटपटी चाल कहा
देख्यो है जु माल जापै माँगत जगात हो ।।७।।

---

६. कर लागत इहि थान=इस स्थान पर कर देना पड़ता है ।
७ आगें पहले । सकात=डरते । ऐहै आजाएगा । जगात=कर ।

कृष्ण-वचन

जानत हौ हम जैसौ माल तुम राखति हो,
दुरी नही बात जग जानत विख्यात में ।
हीरनि के झंत्रा अरु कंचन कलस नए
विद्रुम औ केसर सुरंग सरसात में ।
गज औ तुरग सग सोज सब दामनि की,
'सूरति' सुकवि सो प्रकट दरसात में ।
कहा कहौ बात मैं लही हो बड़ी घात मे सु
माल है जु गात मे तो माँगत जगात मे ।।८।।

गोपी-वचन

नए हो जगाती नैक नए हौ न कछु तुम
बीस ह्याँ कहेगी जौ पै एक तुम कैहौ जू ।
भूलो जिन धोखे ए न अबला अबल होंहि
नेक भोह ताने सव सुधि भूलि जै हो जू ।
'सूरति' सुकवि चतुराई की ए बाते घाते
कीजियै निसंक हम पै न कछू पैहो जू ।
जान दीजै ओक, काहे टोकि-टोकि राढ़ि कीजै
रोकि राखे कहा तुम रोकड़नि लैहो जू ।।९।।

कृष्ण-वचन

लैहे वहै जु कछू जिय में तुम
मारग जो नित ही इत ऐहौ ।
छूटि हौ क्यो हू दिये बिनु ना जु पै
भामिनि कोटिक बात बनै हौ ।
'सूरति' और कहा कहियै इतनी
मन जानि रहे सुख पै हौ ।
जो तुम या ब्रज मे बसि हो रसि हौ
लसि हौ हँसि हौ अरु दै हौ ।।१०।।

---

८ दुरी=छिपी । दामनि की धन की । जु गात मे=जो शरीर मे ।

९ ह्याँ=यहाँ पर । कै हो=कहोगे । ओक=घर । राढ़ि=झगड़ा । रोकड़नि=धन सम्पत्ति ।

१०. क्यो हू=किसी भी प्रकार । रसि हौ=रस प्राप्त करोगी ।

गोपी-वचन

सीख कहा इनको लगि है ए तो
आपनी चाह सदा अनुरागे।
को वसुधा जसुधा के नही जिनकौ
लहि भिच्छुक होत सभागे।
वस्तु पराई लगै मधुरी यह
टेव परी जु इही रस पागे।
वालक हे तव चोरी करी जव स्याने
भए तव माँगन लागे।।११।।

दोहा

वचन रचन सुख वलित कहि, चलति भई व्रजवाल।
नेह कलित मधु ललित वच, वोले तव नदलाल।।१२।।

कवित

"खरी होहु ग्वारिनि", कहा जू हम खोटी देखी
"सुनों नैक वैन", "सौ तो और ठॉव जाइये।"
"दीज्यै हमें दान", "सौ तो आजु न परव कछू"
"गोरस दै", "सौ रस हमारे कहाँ पाइये।"
"महीय दीजै", सौ तौ महीपति दै है कोऊ"
"दह्यौ', "जौ पै दहे हौ तौ सीरौ कछु खाइये।"
'सूरति' सुकवि ऐसे सुनि हसि रीझे लाल
दीनी उरमाल सोभा कहाँ लगि गाइये।।१३।।

दोहा

तव हँसि-हँसि ग्वारिनि दयौ, ग्वारनि दधि वहु भाइ।
लीला जुगल-किसोर की, कहत-सुनत सुखदाइ।।१४।।

"इति श्री दानलीला मिश्र सुरति कृत सम्पूर्ण संवत १८३४ फागुण सुदी १३ वुधवार।"

———

११. जसुधा=यशोदा। हे=थे। स्याने=वडे।

१२. यह छद भक्ति विनोद मे भी संख्या १५१ पर है।

रामचरित

रामचरित

चौपाई

रामचरित्र सुनो चित लाई,
भव-तारन लीला सुखदाई।
अवधपुरी जहँ परम समाजा,
राज करे श्री दशरथ राजा ।।

छंद

तिन राज के सुत चारि प्रकटे,
परम अति अभिराम है।
श्री रामचंद्र से भरत लछमन,
सत्रुघन इहि नाम है ।।
प्रभु अवधि में सुख अवधि दीन्ही,
बाल लीला कौ किये।
इक समें विश्वामित्र कें गै,
जग्य-रक्षा के लिये ।।१।।

चौपाई

प्रथमहि तहाँ तारिका तारी,
मारि सुबाहु करी रखबारी।
सीय स्वयंबर की सुनि गाथा,
चले संग रिषि श्री रघुनाथा ।।

---

१. अवधि=अयोध्या। अवधि=समय। गै=गये।

छंद

मग चले पग सो सिला तारी,
वहुरि मिथिला आइयौ।
जहँ जनक जू इक धनक राख्यौ,
तनक किहूं न उठाइयौ ।।
सोइ तोरि प्रभु सीता विवाही,
नृप वरात बुलाइकै।
तहँ चारि हूँ सुत व्याहियौ,
दशरथ नृपति सुख पाइकै ।।२।।

चौपाई

विदा वरात भई जव चार्यौ। रिषि जू निज आश्रम पगु धारयौ।
भेटे आइ परसु द्विजराई। क्षत्रिय रूप परम सुखदाई ।।

छंद

मिले परसुरामहि आपु तिनको सकल दोप निवारियौ।
पुनि नगर आए भै वधाए, सवनि लखि धन वारियौ।
तहं वाम धाम चढी निहारति राम रूप मिलो सवै।
पुनि मात कौसल्या लिये सुत औरु दुलही तबै ।।३।।

चौपाई

मगलचार विविध तहँ कीने, दान अनेक भाँति नृप दीने।
दुंदुभि वजे गुनी गुन गावैं। जहँ-तहँ वदीजन वर ध्यावैं ।।

छंद

इक समय भरत' रु सत्रुघ्न दोऊ भये विदा ननसार कौ।
श्रीराम लछमन घर रहे सुख देत नरन अपार कौ।
इक दिन वसिष्टहि वोलि नृप जु कही सुभ दिन देखिये।
हम राज रामहि दियौ चाहै परम समरथ लेखिये ।।४।।

---

२ धनक धनुष। तनक-थोड़ा भी।

३ परसु द्विजराई परशुराम।

४ ननसार नाना का घर।

चौपाई

यह वात भरत जननी सुनि लीनी। मंदिर नृप सों विनती कीनी।
देन कह्यौवर सौ अब दीजै। रामहि वन भरतै नृप कीजै॥

छंद

कीजै नृपति भरथहि सुनत यों मूरछा नृप कौ भई।
सुनि रामचद्र चले सु वन कौ मातु पितु आज्ञा लई।
सँग सीय लछिमन चले वन, सुनि नृपति प्रान तजे तहाँ।
पुनि आइ भरत पुरी निहारो सोक मय सवरी जहाँ॥५॥

चौपाई

भरत वात सुनि वहु दुख पाए। पिंड-गति करि प्रभु सनमुख धाए।
प्रभु सुनि पितु की गति दुख कीने। मानुष की लीला प्रति लीने॥

छंद

लीला हिये सब विधि-करी पुनि भरत पाँइन परि रहे।
चलिये कृपा-निधि-राजु कोजे, वचन इहिविधि वहु कहे।
प्रभु कही पितु को बोल जामैं रहे सो करनी सही।
यह सुनि भरत चले प्रान तजन सु गंग तट यह मति लही॥६॥

चौपाई

गंगा जू भरतहिं समुझायो। प्रभु-लीला-कह भेद सुनायो।
तव उठि भरतपादुका लीनी। नदीसुर अति सेवा कीनी॥

छंद

सेवा करे इत भरत उत प्रभु चित्रकूट निहारिके।
चलि अत्रि रिषि कौ मिले अस लियौ खल विराधहि तारिके।
सुनि रिपी अगस्तहिं मिले प्रभु जहँ तहँ सु पंचवटी वसे।
तहँ सूपनखहि विरूप किय खरदूपनादि असुरन नसे॥७॥

---

५. पुरी अयोध्यानगर। निहारी=देखी।

६. पिंड-गति पिंड-दान, अंतिम क्रिया।

७. इत=इधर (अयोध्या मे)। नसे=नष्ट किए।

चौपाई

मृग मारीचहिं इति गति दीनी। सिय-छाया रावन हरि लीनी।
सिया-विरह नरलीला कीनी। गीधहिं दरसि परम गति दीनी॥

छंद

चलि सिवरि के फल भखे अरु अनुमत मिले सिय सुधि लही।
सुग्रीव सरनागतहिं को दियौ राज हति वाली तही।
सुधि लैन पुनि अनुमत पठाए फाँदि ते लंका गए।
सीता दरस मुँदरी दई, अरु बाग सब तोरत भए॥८॥

चौपाई

अक्षहि मारि लंक सब जारी। सिय-मति ले आए सुखकारी।
प्रभु सुनि चले कपिनि सग लीने, सागर तट डेरा चलि दीने॥

छंद

सागर मिल्यो पुनि सेतु बाँध्यौ तहँ विभीषन आइयौ।
प्रभु सरन लखि लकेस किय पुनि लंक अंगद धाइयौ।
तिन वाद रावन सो कियौ, अरु मुकुट लै प्रभु पाँ परे।
पुनि घिरे लंका जुध भयौ बहु राकसनि के बल हरे॥९॥

चौपाई

लछमन सकति लगै मुरछानें, अनुमत औषद लैन पठानैं।
कुंभकरन अरु इन्द्रजित मार्‌यौ, पुनि वह रावन दुष्ट संघार्‌यौ॥

छंद

रिपु मारि भार उतारि महि को,
चले सीतहि ले तहाँ।
रिषि भरद्वाजहिं लखि मिले,
पुनि आइ भरत बसे जहाँ।
पुनि अवधि आए भै बधाए,
मात मिलि सब हरषियौ।
पुनि रिषि मिले सब आनि तत्व,
विचारि करि सुख बरसियौ॥१०॥

---

८. तही वहीं पर। फाँदि=उलँघ करके।

९ पाँ-पैरो पर।

चौपाई

राज-तिलक प्रभुजू तहँ लीनों,
मन भायौ सब ही कहँ दीनौं।
सिव-ब्रह्मादिक प्रभु-स्तुति कीनी,
राजनीति मधुरी रस भीनी।

छंद

इक सूद्र तिहि वच दूत सुनि,
पुनि वन निवास सियहि दियो।
इक स्वान को प्रभु न्याउ करि
लवनासुरहि कौ वध कियौ।
पुनि अश्वमेघ सु जग्य राच्यौ
जहँ तुरंगम छाँड़ियौ।
सीता सुवन लव भए
तिनि रोकि जुद्ध सु मॉड़ियौ ॥११॥

चौपाई

बालक महिपालक सब जीते,
गर्ववंत कीन्हें बल रीते।
तब प्रभु लीन्हें निज उर लाई।
आए सवनि सहित सुखदाई।

छंद

सुखदाइ आइ अनंद दीने पुत्र मित्र समाज कौ।
यों नित अजोध्या में विराजत अवतरे जन-काज कौ।
श्री राम जू के चरित इहि विधि सेस-गंगापति रटै।
'सूरति' सुकवि सो सुनत गावत कोटि कलि-कलमष कटैं ॥१२॥

॥ श्रीरामचरित सम्पूर्ण ॥

---

११. सुवन=पुत्र। माडियौं=किया।
१२. कलि कलमष=कलियुग के पाप।

श्रीकृष्णचरित

श्रीकृष्णचरित

चौपाई

कृष्ण-चरित सदा सुखदाई, जिहि गावत सुर नर मुनि राई।
मथुरा प्रगटे पूरन कामा, श्री वसुदेव-देवकी धामा ॥

छंद

वसुदेव-देवकि कैं प्रगटि उहि रैनि गोकुल आइयो
श्री नंद जसुदा किय वधाए परम आनन्द छाइयो।
तहँ कंस पठई पूतना. विष देन तिन सुभ गति लही।
पुनि हत्यौ सकटासुर तृषा, मुख माँहि सब दिखई मही ॥१॥

चौपाई

गर्ग जू नामकरन तहँ कीनों, पुनि माखन चोरी चित दीनों।
मृतिका भखि मुख सृष्टि दिखाई, आपुन बँधि तरु तारि कन्हाई ॥

छंद

तरु तारि बहु त्यौं महावन तें आइ वृन्दावन बसै,
तहँ दुष्ट तिरनासुर वकासुर मारि अति छवि सौं लसे।
इक सर्प-वपु मार्यो अघासुर जोति आपु मिलाइयो,
अरु बाल वृत्रा कैं हरे सव रूप आपु वनाइयौ ॥२॥

---

१. मूल प्रति में 'कृष्ण-चरित्र' एव 'मथुरा' के पूर्व 'श्री' लगा है।

२. वृत्रा=वृत्रासुर।

चौपाई

बहुरि ताल वन धेनुक मार्यौ, दह तें काली नाग निकार्यौ ।
रेंनि अगनि तें रच्छा कीनी, मारि प्रलंब वलहि छवि दीनी ।

छंद

छवि दई वलहि वहु त्यौं दवानल टारि जन वाधा हरी ।
पुनि वेनु गीत बजाइ कै मोहीं सकल ब्रज-नागरी,
पुनि चीर चोरे कदम चढ़ि परभात माँगत मन हरे ।
तर जाय दरसन दै मनोरथ सवनि के पूरन करें ।।३।।

चौपाई

वरस्यौं इन्द्र महाझर लाई, गिरि गोवर्द्धन लियो उठाई ।
ग्वारनि पै निज चरित कहाए, वसन गये तहँ नंदहि लाए ।

छंद

यों लाइ वहु स्यों सरद जामिनि रास-मंडल सुभ रच्यौ ।
ले प्रानप्यारी संग तहँ वहु गोपिकनि प्रति रंग मच्यौ ।
धुनि सुनत मुरली थके रवि-ससि थके देव विमान में ।
ब्रज भयो परमानन्द सो कहि सकैं कौन वखान में ।।४।।

चौपाई

संखचूड़ वृपमासुर मार्यो, कैसी अरु व्योमासुर तार्यौ ।
न्हात अक्रूरहि दरसन दीनों, सो प्रभु मथुरा आवन कीनौ ।

छंद

पुनि आइ मथुरा रजक दुष्टहिं मारि वसन तहाँ लए,
प्रभु आपु, अरु बलदेव पहिरे बाँटि अरु ग्वारनि दए ।
कुवजहिं सु मिलि धनु तोरि पुनि गज मारि दंत उखारियौ,
दोउ वीर काँधे धरि चले लखि प्रान पुरजन वारियौ ।।५।।

चौपाई

रंगभूमि आपुन प्रभु आए, सव हों सन विधि दरसन पाए ।
मुष्टिक अरु चाणूर पछार्यौ, कंस नृसंस मारि महि डार्यौ ।

छंद

ज्यों दुष्ट मारयौ पुहप बरषे सब हि विधि प्रभु सुख भये,
पुन्यानि आपु पढ़े जहाँ गुर पुत्र आनि सबै दए।
संदेश दै ऊधव पठाए ब्रज भँवर गाथा भई,
अक्रूर [हस्तिनपुर पठाए पाँडवनि की सुधि लई ॥६॥

चौपाई

जरासंध कौ सब दल मार्यो, जवनि मारि मुचकुन्दहि तार्यौ।
पुरी द्वारिका सुबस वसाई, तहँ विवाह कीने जदुराई।

छंद

तहँ प्रथम श्री रुकिमिन विवाहौं सकल खल मद झारि कै,
तिनकें भए प्रद्युम्न सुत रति लई सेवर मारि कै।
पुनि सत्यभामा जाँबुबन्ति व्याही सु [मुनि परसंगत तैं।
— — — — ॥७॥

चौपाई

बहुरि देवि कालिंदि विवाहीं, सत्या पुनि व्याही विधि माहीं।
भद्रा और लछमना रानी, आठौ पटरानी मनमानी।

छंद

पुनि मारि नरकासुरहि लाए राजकन्या ही सबै।
ब्याहीं मुहूरत एकहीं सोरह सहस दुलही तबै।
बहु पुत्र प्रकटे बहुरि श्री बलदेव रुक्मी मारियौ।
पुनि बानासुर की भुजा काटी कूप तैं नृप तारियौ ॥८॥

चौपाई

श्री बलदेव ब्रजहि पगु धार्यौ, हरि जू पुनि पौडिक नृप मार्यौ।
वानर द्विविध तारि सुख बरसे, नारद कौ मंदिर प्रति दरसे।

छंद

यों दरसि पांडव जग्य साध्यौ जरासंध हि मारिकैं,
राजा छुड़ाए बंदि तें प्रभु विरदु निज उर धारिकैं।
सिसुपाल साल्वरुध सोभ हति पुनि दंतवक्त्रहि मारियौ,
संपति सुदामा कौ दई मुख पै न तनक उचारियौ ॥९॥

चौपाई

सुर्ज-ग्रहन कुरुक्षेत्रहिं आये, ब्रज-जन मिले परम सुख पाये,
आइ मिली सबही पटरानी, अब अपनी जहँ कथा बखानी ।

छंद

यों कथा देवकि के प्रथम सुत दिये है प्रभु आनिकें,
ब्याही सुभद्रा अर्जुनें बल सों विनय अति ठानिकें ।
दिय दरस द्विज श्रुति देव नृप पुनि सुनी वेद स्तुति करी,
बृक मारि द्विज को पुत्र दिय यों द्वारिका राजत हरी ।।१०।।

चौपाई

ऐसे नित लीला श्रुति गावै, अरु ब्रह्मादिक पार न पावें ।
सदा सनातन रूप विराजें, लीला करत भक्त हित काजें ।

छंद

लीला करत नित भक्त काजै परम अद्भुत साज सों,
प्रभु नित्य वृन्दावन विराजै जुगल रूप समाज सों ।
ए चरित सेस दिनेस श्री गंगेस हिय अभिराम है,
'सूरति' सुकवि श्री भागवत को ध्यान यह सुखधाम है ।।११।।

श्रीकृष्णाय नम- । इति श्री भक्ति विनोद राम-कृष्ण-चरित सूरति कवि कृत संपूर्ण ।।शुभमतु ।। श्री ।।

फुटकर छंद

फुटकर छंद

अ—रस-सरस से संकलित

नव-रस

सो रस नव सिंगार पुनि,
हास रु अद्भुत बीर।
रुद्र, भयहि वीभत्स अरु,
करुना शान्त सुधीर ॥१॥

शृंगार रस

बुधि विलास जुत जहँ रहें,
रति कों पूरन अंग।
ताहि कहत शृंगार रस,
केवल मदन प्रसंग ॥२॥

धर्मानुकूल नायक

घरम करम काज कामिनी कुलीन करै,
'सूरति' संजोग जोग सुरति सुरति माँहि।
नित प्रति चार औ अचार कों विचार जिहिं,
भावैं सुर ईस सेवा, विषै सुख रुचै नाहि।
वचन जौ बोलै ताकों त्योंही प्रतिपाल करै,
कबहुँ न छाँड़े नेक काहू की जु गहै बाँहि।
ऐसी अनुकूलताई कौने बनि आई भाई,
मानै अघ होय परतीयहु की छुवैं छाँहि ॥३॥

---

१. रस-सरस, छन्द ६, पत्र ३८—२

२. रस-सरस, छन्द ३३, पत्र ३६—२

३. रस-सरस, छन्द ६३, पत्र ४१—१

भयानुकूल नायक का उदाहरण

रोचि में रजनिपति, गुन माँहि गनपति,
धन माँहि धनपति, तेज सरसायौ है।
'सूरति' सुजानताई कहाँ लों वखानों सव,
नाइक में लाइक सो ठाठ वनि आयो है।
और सुनि आली मेरे भाग की वडाई जातें,
जिय मे रहत नित आनँद ही छायौ है।
पिय के हियै में लोक भय आनि वस्यौ उन,
मेरे हिय मैं ते सौति भय सौ भगायौ है ॥४॥

चातुर्य प्रिय दक्षिण नायक

रूप अभिनेंन जुत दृगनि लुभायें लेत,
चित्र सुकुमार वार सुख को न सार है।
नूतन सुवैस कैसे करै समताई गुन,
घटै नित वढै यह कोविद विचार है।
'सूरति' सुरति विनु देत न सरस रस,
कवहुँ इकन्त ऐसैं वचन उचार है।
देखौ गुनताई सुखदाई मनभाई कहा,
जेती चतुराई जामें तेतोइ पियार है ॥५॥

मुग्धा सुरताग्यात नायिका

कहा भयौ नेक तन जोवन दिखाई दई,
लाज की झलक सी पलक दृगहू गहैं।
तऊँ दिनराति लरकाई की सुहाई रीति,
छूत न क्योंहू रिस फूसी हम जो चहै।
तासों तुम चाहत अनग को प्रसंग संग,
पै ये ढंग रावरे अनौखे चित्त कौं दहैं।
भूषन वनाइवे की जाहि न सुरति वह,
जानत सुरति औ 'सुरति' कौन सौं कहैं ॥६॥

---

४. रस-सरस, छन्द ६९ पत्र ४१–२

५. रस-सरस, छन्द-सख्या ८२, पत्र ४२–२

६. रस-सरस, छन्द-संख्या २४, पत्र ४६–२

भय विशेषा मुग्धा वर्णन

सेत जरतारी सारी सजि पी नबल नारी,
बैठे मिलि सेज मध्य जोन्ह जिमि क्षीर में।
कै कै समाधान चह्यौ सुरति सुजाँन जब
भजी भय मानि रही नैसि कन धीर में।
गह्यौ पिय वास कह्यौ एतौ विसवास काहे
बोली ...न कहा जानो लोभो पर पीर में।
सीस ते उतारि पट पाछे यों फरहरात
झिलिमिलि चद सुष-कंद मनौ नीर में ॥७॥

सुरति लज्जा मध्या

'सूरति' सुरति करि सुखद निसि, चख ऊँचै न उचाइ।
हा-हा कहि-कहि चिबुक गहि, सुख लहि पिय मुसकाइ ॥८॥

संकेतावरोध अनुशयाना नायिका

भौर ही तै आनँद करोर विधि बाढ़े सुनि
नंद के किसोर मति मिलन विचारी है।
'सूरति' सु देखौ अब रवि हू छिपन आयौ
मेह दबि आयौ सब समै सुखकारी हैं।
ऐसे नीके बानक मे आनक में भई औरै,
दयौ है अचानकहि दई दुख भारी है।
ऐरी उहि बाग बड़े भाग सों सकेत हुतौ
आज उहाँ वासिकै बटोही बाट पारी है ॥९॥

---

७. रस-सरस,-छद-संख्या २५, पत्र ४६—२ वास=वस्त्र। विसवास=विश्वास।

८. रष-सरस-छद-संख्या, ३७, पत्र ४७—२

९. रस-सरस-छंद-सख्या, ८२, पत्र ५४—२

चरित–कोविदा नायिका

नवल किसोर लाल गेरु मे बुलाए बाल,
अति ह्वै खुमाल रस केलि सरसाई है।
तिहि छिन सास घर-घाली कहुँ आइ गई,
बोली पिय जाओ दूती सग लपटाई है।
कौतिक निहारि गुरु-नारि कह्यो कहा है भयौ
यह निरदई सुन त्रास काज आई है।
नीठि कै छुटायौ तेरौ जस उपजाये वलि,
सुरति सु वारी कहा सूरति दुराई है ॥१०॥

भाग्य–प्रशंसीनी स्वाधीनपतिका

परम सुजान गुनवान कुलवान सव,
विद्या सुनिधान जस ऐसे हित धारी के।
जिनकी रसाल छवि देखै वहु वाल मोहि
होत है विहाल यो वखान वनवारी के।
'सूरति' सु जाकी सम है न मैन मूरति हू
कहा लौ वखानो गुन ऐरी सुखकारी के।
ऐसो पिय मोसो अनुराग-वस जानति हौ,
मेरे से न भाग औ न भाग काहू नारी के ॥११॥

निद्रा सचारी का उदाहरण

सुन्दर सु वार सग सोहे स्याम सुकुमार
सुमन सुधारि सेज बैठे चित चाइ कै।
सेत ही सु बागै सब वन्यौ है सुवास बास,
रति सौ सँवारि दुहू पहरचौ वनाइ कै।
सुमन के चौसर सजीले कहा लागत है,
तैसो ससि जौन्ह सोभा देत सरसाइ कै।
'सूरति' सकल रस कीनै सुख सौ सरस,
रसमसे सैन वस सोए लपटाइ कै ॥१२॥

---

१० रस-सरस, छद-सख्या १०५, पत्र ५६–२
११ रस-सरम, छद-सख्या ६, पत्र ६०–१
१२ रस-सरस, छद-सख्या ६७, पत्र ८३–१

ब–रसगाहकचन्द्रिका से संकलित छन्द

मंगलाचरण

रसिक सिरोमनि रसिक प्रिन, रस–लीला चित चोर।
रसा रास रस मय करी, जय जय जुगलकिसोर ।।१।।

रूप–मान

काहे कौ जू मुरि बैठती हों रूठि-रूठि,
काहे करतीं हौ भटू भौहनि तनाइवौ।
काहे चित्त चाहती हौ मनुहारि प्रीतम की,
छाँडि देहु आपनी ये चातुरी बनाइवौ।
रूप गरबीलौ सु छवीलौ इत आइ है जौ,
भूलि जैहो तबै मान-साज कौ बनाइवौ।
मुहमदसाहि जू की रीति नहि सुनी आली,
छबि कौ दिखाइबौ सो यही है मनाइबौ ।।२।।

वसंत

हीरा लाल पन्ननि के गहने जु पहनें ए,
तेई फुलवारी मानों फूली है उछाह की।
कहूँ कहूँ नीलम तें भौरनि की पाँति भली,
अरगजा पौन तें सुगन्ध पौन चाह की।

टिप्पणि.—इस पुस्तक मे "रसिकप्रिया" की टीका कुछ प्रश्नों का उत्तर देने के लिये पद्य मे प्रस्तुत की गई है। प्रसंगवश इसमें ५ ऐसे मौलिक छंद दिये गये हैं, जो शुद्ध काव्य की सीमा में आते है। अतः उन छदों को यहाँ संकलित किया जा रहा है।

२ मुरि=मुड़कर। देहु—'क' प्रति मे नही है।

भूमि में जु फूल फूले केतौ रितु मैन मानों,
ताकी एक बात मै विचारी यौ उनाह की ।
औरु सव कोऊ सोभा देखत वसंत की सो,
देखत वसत सोभा मुहमदसाह की ।।३।।

होली

लावति अवीर मेरी वीर दौरि दौरि औ,
गुलालनि के थाल भरि लै लै निवहति है ।
न्यारी पिचकारी सुखकारी भरि राखी पुनि
चोवा अरु चंदन कौ छारिवो चहति है ।
तू तौ कहै पिय संग होरी जाइ खेली परि,
एक बात कौ तू कछू भेद न लहति है ।
मुहमदसाह जव ताकत है इतै तव,
होरी खेलिवे की कौने ताकति रहति है ।।४।।

अनुराग

डोलै वावरी-सी वोलैं विचल-से वैन चैन,
दिन हूँ न रैंन याहि भई विथा भारी है ।
तापै तुम चन्दन गुलाव छिरकति भटु,
नाहक कपूर दै दै चूर करि डारी है ।
जानति न पीर वेही काज ऐइ लाज करौ,
मै तौ जिय आपने में वात यों विचारी है ।
याकी यह 'सूरति' भई है ताते जानी कहूँ,
मुहमदसाह जू की 'सूरति' निहारी है ।।५।।

---

३. उछाह=उतसाह । ताकी = उसकी । पाँति—'क' मे "भाँति" पाठ है ।
४. वीर=सखी । परि=पर । कौने—किसको ।
५. विचल-से=अस्त-व्यस्त, उल्टे-सीधे । याहि = इसको । तापै=उस पर । तातै=इसलिए ।

प्रबोधचन्द्रोदय भाषा

'प्रबोधचन्द्रोदय भाषा

दोहा

गुण गणेश गावौ गुणी, सब विधि सुख सरसाइ ।
बाढ़ै बुद्धि विवेक बल, महा मोह मिटि जाइ ।।१।।

अलख अनादि अनंत अज, अद्‌भुत अतुल अभेव ।
अविनासी अद्वय अमित, नमस्कार तिहि देव ।।२।।

है प्रबोध नाटक विदित, कथा जु संस्कृत माँहि ।
सो यह भाषा मैं कियौ, जिहि सुनि भव दुख जाहि ।। ३।।

कही कथा सक्षेप ते, सूरति सुकवि बनाइ ।
रोचक अरु वह समझियै, तौ भव तरन उपाइ ।।४।।

कथा

कीर्त्तिवर्म इक नृपति हौ, सदा विषय आसक्त ।
हास विलास सिकार अरु, नट लीला अनुरक्त ।।५।।

मंत्री तिहि गोपाल तिन, चित मै कियौ विचार ।
कीजै कछु ऐसौ जतन, नृप उतरै भव पार ।।६।।

तब इक नट कौ बोलिकै, नाटक सिखयो ताहि ।
जामैं मोह विवेक की, जुद्ध-कथा सब आहि ।।७।।

तब इक दिन नृप सों कही, आयौ नट जु नवीन ।
स्वाँग बिबेक ऽरु मोह कौ, नीकौ करत प्रवीन ।।८।।

ताकौ आज्ञा दीजिये, ज्यों बिबेक की जीत ।
भई मोह हारौ सबै, रूप रचै उहि रीति ।।९।।

---

७. विवेक—'ख' प्रति मे 'विवे' ।

८. स्वाँग—अभिनय की एक लोक-पद्धति ।

ककुभा छंद

तहाँ एक दिन अति प्रसन्न ह्वै, कीर्त्तिवर्म वह राजा।
बैठो हुतौ सभा सुखदाई, साजै सकल समाजा ।।
सूत्रधार इक नारि लिये सग आइ दडवत कीनी।
ताकौ भूप निहारि गुनी अति, आज्ञा तिह इक दीनी ।।१०।।

नृप विवेक अरु महामोह कौ, स्वाँग आनु इहि वारी।
तय उनतै परदा इक रचि कै, राखि ताहि मधि नारी ।।
कह्यौ वोलि तिहि स्वाँग सुकीजै, नृप विवेक ज्यो जीतै।
महा मोह हारै तासौ अरु, सवै दिखावौ रीतै ।।११।।

इती कहत हो 'त्यौ' परदा विच, कामदेव तहाँ आयौ।
महा मोह की हार वात सुनि, महा हिये दुख पायौ ।।
तुरतै तेग पकरि कर सो तव, काम वचन कहि ऐसै।
रे गँवार सठ सूत्रधार तूँ, वृथा वकतु है कैसै ।।१२।।

हम से जाके जोधा जग जिहि, तीन लोक वसि आनै।
ता नृप महा मोह पै मूरख, जीत विवेक वखानै ।।
इह सुनि सूत्रधार निज तिय सों, हरयै वचन सुनायौ।
महा मोह कौ महावली यह, मन्मथ जोधा आयौ ।।१३।।

सुनि कै वात कोप इन कीनो, ह्याँ अव रहिवो नाही।
यह कहि सूत्रधार लै नारी, जात भयौ छिन माही ।।
कामदेव परदा ते वाहर, सभा वीच पुनि आयौ।
सुंदरता ताकी को वरनै, जैसे ग्रंथनि गायौ ।।१४।।

संग लिये रति नाम वाम, अभिराम रूप कौ धारै।
मद घूमत नैना रतनारे, प्रिया-कठ भुज डारै ।।
फूलन के गहने फूलन के, धनुप वान कर सोहै।
सुदर स्याम सलौनी मूरति, जाहि देखि सव मोहै ।।१५।।

---

१०. छदशास्त्र के अनुसार यह 'सार' छंद है।
११. ताहि='ख' प्रति मे 'ता'।

आइ सभा मैं काम बाम सौ, ऐसें वचन सुनायौ।
देखि तीय कहि गयौ वृथा वकि, सूत्रधार जो आयौ।।
भूप हमारौ महामोह है, ताकी हार बतावै।
जीत बिबेक बखानै मिथ्या, कहत लाज नहि आवै।।१६।।

तब गति सौ बोली रति सुनियत, बली बिवेक महाई।
बडे-बडे जोधा सग जाके, निसि दिन रहत सहाई।।
प्रथम सील सतोष दूसरौ, अरु सतसग बषानौ।
छमा दया अरु दान सत्य, वैराग्य बली बहु मानौ।।१७।।

यह सुनि काम वाम सौ बोलौ, तिय अति डरत महाई।
हमरे महा मोह के जोधा, सुनि सुंदरि सुखदाई।।
इक तौ मै अरु क्रोध लोभ है, गर्भ बिरोध सुजानौ।
मिथ्या अरु पाषड महाबल, हिसा त्रिष्ना मानौ।।१८।।

तिन मै इक मेरी सुनि मैं सब, किये सबल बल हीने।
त्रिय कटाक्ष हथियारहि सौ मैं, तीन लोक वस कीने।।
इद्र कियौ वस गौतम ऋषि की, त्रिय जु देखि ललचानौ।
गुरु पत्नी कूं देखि चद्रमा, महा दोष लिपटानौं।।१९।।

विधि हू अविधि करी सो, मेरे बाननि की अधिकाई।
ऐसे हूं जो जीव बसत जहँ, मेरे दास सदाई।।
जहाँ बाग अरु राग तडाग, सुगंध सेज त्रिय होई।
ऐसी फौज हमारी जहाँ-तहाँ, रहै विवेक न कोई।।२०।।

तब तिय कही सही पिय यौ है, शत्रु न छोटो गिनिये।
और बात कछु पूछत प्रीतम, वहू भेद कछु भनिये।।
महा मोह जु विबेक भ्रात है, सुनो वैसा भयौ कैसें।
कहौ बात मोसों यह प्रीतम, समझि परै सब जैसे।।२१।।

---

१७. रहत—'ख' प्रति में नही है।
१८. नारी='ख' प्रति मे नारीय।
२०. बाननि–'ख' मे "बानन की"। इस क्रम-सख्या का छंद 'क' मे नही है।
२१. वहू=वह भी। भनिये=कहिये। नैं=वह। मो सो=मुझसे।

तब रति-पति बोलौ, सुनि उतपति इनकी सबै बताऊँ।
याकैं कुल विरोध की कारन, सों तिय तोहि सुनाऊँ॥
आदि पुरुष माया जाया तिहि, लखि मन सुत उपजायौ।
प्रवृति निवृति मन की द्वै तरुनी, तिन संतान बढ़ायौ॥२२॥

महा मोह दै आदि सबै हम प्रवृति नाम तिहि जाये।
विवेक आदि सब भये निवृत्ति के, भ्रात त्रिमात कहाये॥
तहाँ मोह मन की आज्ञा मैं, हम सब पितु को भावै।
विवेक आदि मन तात बात तजि, औरे रीति चलावै॥२३॥

महा मोह कौ राज दियो मन, पिता भूमि बहु दीनी।
कहुँ कहुँ भूमि दई विवेक ही, भोग-जोग कर हीनी॥
तातै वे सब तात मात मम, वंश हन्यौई चाहै।
एक बात सुनिबे मैं आई, जातै चित्त अति दाहै॥२४॥

तब रति कही कहौ पति हम सो, कारन कौन न कहिये।
प्यारी जो मानत हौ तौ पिय, सबै कह्योई चहिये॥
मदन कही त्रिय कहनावत इक, सुनी झूठ पै ह्वै है।
हमरे कुल मैं एक राकसी, प्रगट होइ दुख दै है॥२५॥

मोह दिक सब बस नासि है, वृथावाद कछु ऐसे।
वैरी वैरु झूठ बाधत है, साँच होइ तौ कैसे॥

रति-उवाच

कहिये पिय किहि नाम ग्राम वह कहाँ प्रगट सो ह्वै है।
जैसी सुनी कहो प्रिय तैसी, कैसे वंस नसै है॥२६॥

---

२२ याकैं—'क' मे ये कैं।

२२ पुत्रउजायौ—'क' मे पुत्र उपजायो।

२५ राकसी=राक्षसी।

मन्मथ उवाच

सुनि तिय विद्या नाम सु ह्वै है, वेद-सिद्धि तिहि जनि है ।
कहै बिवेक पिता ताको वह सकल वश कौ हनि है ।।
यह सुनि रति अति मूर्च्छित ह्वै कै परी धरनि के माँही ।
कामदेव तन धीरज दे कै लई उठाइ गहि बाँही ।।२७।।

बोलौ झूठ कि साँच ताहि सुनि भलौ कियो भय चित कौ ।
जव लग महामोह अरु हम है, चितै सकै को इत कौ ।।
इतनी बात होत हो ज्यौ 'ही' नृप विवेक तहाँ आये ।
संग तीय मति पट-अंतर ते रति पति वचन सुनाये ।।२८।।

अरे कुकर्मी नीच कर्मरत, वृथा बाद क्यो बोलै ।
वडे बडिन की निंदा करि गुन झूठ आपनो खोलै ।।
यह सुनि काम वाम सै बोलौ, हरै वचन तिहि ठाही ।
यह तौ वोल बिवेकहि कौ सौ, सुनियत है पट माँही ।।२६।।

सुनि सो बात रिसातहि आयौ, अब ह्याँ रह्यौ न चहियै ।
यह कहि काम गयौ तिय संग लै, महा मोह जहाँ कहियै ।।
नृप बिवेक पट बाहिर आये, वोले धीरजता सौ ।
देख्यौ त्रिय कहि गयौ वृथा बकि काम गरब की बातै ।।३०।।

झूठौ जग तामै जग के सुख, झूठौ निपट महाई ।।
नरक धाम जो बाम कार, सठ ताकी करै बाड़ाई ।।
रोग वियोग सोग अरु चिंता, मरन अंत जिहि माहीं ।
ता जग कौ सुख मान रह्यौ है, इहै भूलि यह ठाहीं ।।३१।।

सुख रूपी चेतन निज तन मै, ताकी सुरत विसारी ।
इन्द्रीगरण जे जड है तिन मै, मानत सुक्ख अनाड़ी ।।
जो सुख इन्द्रिनि तैं है तो तौ प्राण गये वे है ही ।
क्यौ न लहै सुख याते जानौ उहि प्रसंग सुख लैं ही ।।३२।।

---

२७. बाँही = भुजा

२८. इतकौ = इधर की ओर ।

२८. तीय मति = 'ख' मे तोय मति ।

२६. हरै = धीरे, मंद = ध्वनि मे ।

३२. है तो तौ = 'ख' में "है तौ" ।

तातें चहियै इह सुख रूपी, चेतन सौं मन लावै ।
जगत असार जान जानि कै छाडै, तो परमानँद पावै ।।
अरु सुनि मदन कहि गयौ हम सो पितु आज्ञा मैं नाही ।
सो मन तात वात सुनिये वह सदा कुमारग माँही ।।३३।।

हरि सों विमुग्न करे जु पिता गुरु मात भ्रात ते तजिये ।
वेद वचनइ पिता तैं दोख न भले करम ते सजिये ।।
पिता तज्यो प्रह्लाद, शुक्र गुरु तज्यौ, न वलिनैं मानौ ।
माता भरत तजी भ्राता तजि दियो विभीपन जानो ।।३४।।

जो कुमार्गी होय सु तजियै अरु सुनि मन अघ वोयौ ।
निज पितु जीव वन्ध मे करि कै, भूलि नीद अप सोयौ ।।
जव मति पूछी सुद्ध जीव तुम आतम रूप वखानौ ।
क्यौ यह दीन भयौ सो लखिये सुख दुख मै लिपटानो ।।३५।।

कही विवेक सुनौ तिय चेतन सुद्ध फटिक ज्यो सोहै ।
जो रँग निकट धरौ सो भासै, त्यौं माया सग सो है ।।
मन के सग ढग सव विगरे जगत जाल मे आयौ ।
कौन कौन इह जोनि जोनि में मन ने नहिं भरमायो ।।३६।।

तव मति कही सुनौ पति कवहूँ मन निरमल गति ह्वै है ।
जा करि जीव अविद्या छुटि है, सुद्ध रुप ह्वै जै है ।।
कही विवेक येक तिय वात सु मो पै कही न जाई ।
तिय कौ और तिया की वातै कवहू नाहि सुनाई ।।३७।

मति वोली कहिये पिय मोसो तुम्हरे सुख दुख माँही ।
पतिव्रता को इही धरम है, पिय हित धरै सदा ही ।।
सुनि तिय हमरै और तिया इक नाम वेद-सिधि जाकौ ।
वहुत दिनन ते मान करि रही, आवन वनौ न ताकौ ।।३८।।

---

३४ तुलसीदास के एक पद के भाव पर आधारित

३७ 'ख' अविद्या ते छुटि ।

सांति दूतिका जो उहि लावै तौ वह मो पैं आवै।
तासे सुत प्रबोध उपजै तव, सो वह मनहि ज· ावै ।।
विद्या नाम होइ इक पुत्री, ये दोऊ जब ह्वै है।
तब मन लीन होइ चेतन मे सकल काज बनि जैहै ।।३९।।

सुनिये नाथ बात ऐसी जौ तौ उहि वेग बुलै हों।
मिटि है सकल कलेस औरु मै सान्ति अपरमित पैहों ।।
हौ प्रसन्न बोले विवेक यो, बात सुनौ इक रानी।
सुनियत ऐसै महामोह वहु देश लेन मन ठानी ।।४०।।

अपने सुभट जहाँ तहँ पठाय संक न मन में लावै।
उद्यम वेग कीजिये तिहि ज्यौ बैरी बढ़न न पावै ।।
इतनी कहि विवेकी ह ने सम दम सेवक भारे।
तिनि कौ पठवन काज तीरथनि सुंदर सहित सिधारे ।।४१।।

महा मोह इह सुनी आपने लोक बिबेक पठाये।
ठौर ठौर तब इन हूँ सुनि बहु अपने सुभट बुलाये ।।
तिन मै दंभहि आज्ञा दीन्ही तो सौ बली न कोई।
करौ आपनो अमल तीर्थनि मैं ज्यौ रिपु काज न होई ।।४२।।

इतनी कहत महा तीरथ तहँ रूप दभ कौ आयौ।
दंभी तहाँ अनेक साथ हैं देख जगत भरमायौ ।।
भीतर और बहिर मे औरै, लोगन दंभ दिखावै।
अपने जे सेवक ते निज है, तिन यह सीख सिखावै ।।४३।।

सन्यासी दंभ उवाच

सुनहु सकल नख जटा बढ़ावौ, अग बिभूति चढ़ावौ।
वस्त्र भगोहें धरौ जु तन मै, मौनी ह्वै ध्यान लगावौ।
भेट चढावै नर अरु नारी नैनन सौ नहि लखियै।
निसि निसक पाए हरता नहि मरौ सब कुछ भखियै ।।४४।।

---

४२. "इतनी कहि.......भारे"—'ख' मे "इतनी नृप विवेकीह सम अरु दमऔ सेवक भारे।"

४३. अमल = आज्ञा प्रभाव।

४४. सुनहु सकल = 'ख' मे खोवू।

ढ़ोंगी धर्म उवाच

रे चेलौ मुख मूदे बोलो, चिटी झारि पग धारौ ।
हिसा होइ न काहु जीव की, यहै धरम कौ सारौ ।।
सेवक लखै उपास पास के दिन में यहि विधि रहियै ।
मत्र यत्र निहसंक करौ निशि अंक नवल तिय गहियै ।।४५।।

वैरागी दंभी उवाच

हम वैरागी सर्वस त्यागी ये तौ वातै कहिये ।
वसन वास भूषन वहु भोजन प्रभु सेवा हित चहिये ।।
छापा तिलक देहु नर नारी जाते सव दुख जाही ।
तन मन धन अरपन करि दीजै इहै मुक्ति जग माही ।।४६।।

ऐसे दभ सवै दभनि सँग वैठ्यौ जहाँ तहाँ ही ।
अहकार आयौ द्विज अपनौ रूप धरै तिहि ठाँही ।।
नाक सिकोड़ै तिरछी चितवन तपी व्रती तिहि देखै ।
तिनकूँ लखि बोलौ कष्टनि सो कहा इनन सुख लेखै ।।४७।।

वड़े मूढ होते सुख छाँडे झूठे सुख की आसा ।
देखौ किन परलोक वृथा ये त्यागे जगत विलासा ।।
पुनि वे लखि अपने मारग के अहकार तहाँ आयौ ।
दभ सिष्य बोलौ द्विज दूरहिं वैठौ दरसन पायौ ।।४८।।

अहंकार कहि मै अपने कुल सूरज प्रगट्यौ जानौ ।
मो समान काहू गुन मै कोउ नही वात यह मानौ ।।

दंभी उवाच

दंभी कही हम ब्रह्म लोक इक समै गये रे भाई ।
मो लायक थल देख्यौ नहि तव ब्रह्मा वुद्धि उपाई ।।४९।।
अपनी जघ धोइ कै मोकौ ता ऊपर वैठायौ ।
यातै हो परसतु किहुँ नाही सव जग अशुचि निहार्‌यौ ।।

४५. 'ख' मे तृतीय और चतुर्थ चरण नही है ।
४८. होते सुख=उपलब्ध-सुख

अहंकारोवाच

अहंकार बोल्यौ तैं अपनी इतनी बात बताई।
कोटि-कोटि ब्रह्मा मेरे पग परे जु रहत सदाई।।५०।।

यह सुनि दंभ लखी जिय मैं यह अहंकार मत होई।
वृद्ध पिता हमरो तब कहियै मिलै मान हित सोई।।
अहकार पूछी दंभ हि तब पिता लोभ है आछे।
तृष्ना मात झूठ सुत नीकैं रहे कुशल सों पाछे।।५१।।

दभ कही तुम्हारी किरपा तैं नीके सब संग मेरे।
इहाँ विद्यमानहि है सब रे सुख भयो तुम्हारे हेरे।।
भली भई आये तुम हूँ ह्याँ महा मोह नृप ऐहै।
बहुत विरोध वढ्यौ विवेक सौ युद्ध क्रुध ह्वै कैं है।।५२।।

अहकार पुनि कही दभ सौ नही कुसल कछु यामै।
इतनी कहत हुते त्यों आगम नृप को सुनौ सभा मैं।।
पहिले छरीदार आये पुनि बहु सिहासन आयौ।
महामोह आये आपन पुनि सबहिन सीस नवायौ।।५३।।

बैठि सभा मै महामोह तब अपनौं दल सु निहारौ।
रानी मिथ्या दृष्टि हि सो तब ऐसे वचन उचारौ।।
सुनौ सुन्दरी सव तीर्थन मै मेरे लोग बिराजै।
काशीपुरी बची सो लहौ जहाँ विवेक दल साजै।।५४।।

जो विवेक कै सुत प्रबोध अरु पुत्री विद्या होई।
तौ वह शत्रु सबल ह्वै जैहै अबहिं जीतिये सोई।।
रानी कही सुनौ हो राजा काशी हाथ न ऐहै।
इक तौ पुरी बड़ी अरु गंगा सकुल बिबेक बसै है।।५५।।

---

५३. हुते=थे। सिहासन='ख' मे 'सिहान'।

५५, हाथ न='ख' मे 'हाथनि'

एक रटै हरि एक रटै हर एक तपोव्रत धारै।
एक वेद धुनि करै एक तहाँ कथा पुरान उचारै ॥
सल दम नियम जोग कौ साधै एक समाधि लगावै।
ता पुर मै तुमरे जन एक न पिय प्रवेशहू पावै ॥५६॥

राजा वही कहाँ तै उनके वल की वात वखानै।
मेरे जो जोधा तिन वल की गति तिय तू नहि जानै ॥
वधु विरोध वडौ मम मंत्री झूठ प्रधान हमारौ।
कलिपुग है हारोल सेन मै दलपति क्रोध निहारौ ॥५७॥

सोदर मेरौ कामवली विभिचार पुत्र है ताकौ।
पुनि ताकै कलक सुनि उपज्यौ चद सु आसव जाकौ ॥
पुरोहित है पाखड हमारौ लोभ वड़ौ भंडारी।
भ्रम अरु भेद वसीठ वड़ो अपमान सस्त्र सव धारी ॥५८॥

तेरौ पिता कृतघ्न कामिनी नहि कोऊ समता कौ।
स्वामि घात विश्वास घात अरु मित्र दोप सुत जाकै ॥
ब्रह्म दोप तिय तेरौ सुत है, एक वली भुवि माही।
जहाँ होई यह तहाँ धरम के पु ज सवै नसि जाही ॥५९॥

तृष्ना और दुरासा सुंदरि, सदा सखी है तेरी।
इन सौ कोउ न छूट्यौ जग मै, वुद्धि सवन की घेरी ॥
राग द्वेष आलस दरिद्र दुःख, रोग शोक भट मेरे।
को विवेक दीनन की संगी, आवै मो दल नेरे ॥६०॥

इक इक नै जीत्यौ जग सो तौ इह इकठे है सव ही।
शत्रु सकल दिशि दिशि भजि जैहैं, लखि है मो दल जवही ॥
ऐसे रानी मिथ्या दृष्टि हि, जव यो वचन सुनाये।
महामोह राजा कै आगे, तव सव मत्री आये ॥६१॥

वोले श्रद्धा नृप विवेक कूं जौ वह कहुँ तजि जाई।
— — — — — ॥
तव राजा 'विवेक पै भ्रम अरु भेद वसीठ पठाये।
श्रद्धा तजि कशीपुरि छाँड़ी आई सुवचन सुनाये ॥६२॥

---

५६. "एक न पिय = 'ख' एक न पिय"
६२ वह कहुँ = 'ख' मे वह तिन्है। दोनो प्रतियो मे तृतीय व चतुर्थ चरण नही है।

राजा नैक निहारे उन त्यौं जरन लगे जब भाजे ।
आइ कही सब महामोह सो तबै बुद्धि दल साजे ।।
नृपति बिबेक सुनी रिपु आयौ, तब निज सुभट बुलाये ।
चले सकल दल साजि राज तव, देवालय मै आये ।।६३।।

करि परनाम बिंदु माधौ कौ विश्वेश्वर वर लीनौ ।
आइ दुवो दल भये इकट्ठे युद्धारभ सु कीनौ ।।
महामोह ने तहाँ प्रथम ही जोधा क्रोध पठायौ ।
आइ सामई जुद्ध भूमि मै ऐसे बचन सुनायौ ।।६४।।

क्रोध उवाच

मैं हौ क्रोध जहाँ मै आऊँ तहाँ प्रलय ह्वै जाई ।
साधुन के मन एक हि छिन मै करौ असाधु महाई ।।
विश्वामित्र वड़े जग तपसी, जिनके तप वल भारे ।
तिन के हिये प्रवेश करौ मैं, सुत वसिष्ठ के मारे ।।६५।।

जाके हिये वसै भै सो सुत मात पिता संघारे ।
और कहाँ लौ कहौ आपु ही आपुहि कौ सो मारे ।।
ये बातें सुनि नृप विबेक तहँ अपनों सुभट पठायौ ।
सहनशील जेहि छिमा कहत तिन क्रोध हि बचन सनायौ ।।६६।।

सहनशीलोवाच

अरे मूढ जिहि थल मैं आऊँ तहाँ न तू ठहराई ।
कैसोउ अगिनि पुंज मैं आवै, देखैं जल ह्वै जाई ।।
तैं जु कही रिषि विश्वमित्र के हिये प्रवेश मैं कीनौं ।
सुत वसिष्ट के मारे तिन ते इह अपबल कह दीनौ ।।६७।।

कहि तौ रिषि ने जव वसिष्ठ की सहनशीलता जानी ।
तव सु परे पग आइ तहाँ तू क्यौं न रह्यौ अभिमानी ।।
तातै मो आगैं तुहि वन्यौं सकल जग जानैं ।
रे मतिहीन वड़ाई अपनी क्यौं तू वृथा वखानैं ।।६८।।

ऐसे मुनि कैं वचन छिमा के डरपि भूमि रणमाही ।
भाजि गयौ वह क्रोध न जानौ कितैं गयौ किहि ठाँही ।।
तव नृप महामोह नैं अपनौ जोधा काम पठायौ ।
रण मैं आइ गरव अति करिकै ऐसे वचन सुनायौ ।।६६।।

कामोवाच

मै हूँ काम काम मेरे तुम सुनौ जहाँ मैं आऊं ।
जप तपे नेम प्रेम संजम व्रत इनकौ पुंज वहाऊँ ।।
वड़े वडे रिपि तपसी डोलैं भ्ले त्रिय दुति माँही ।
गम्य अगम्य न सूझै गिनको महा अंध है जाही ।।७०।।

मेरो वल लखि मैं अवला करि सवल सभैं वस कीने ।
चौदह लोकनि घर घर त्रिय के रहत पुरुष आधीने ।।
मेरे वान समान आन नहि अद्भुत गति जिन माँही ।
फूलन के अरु दृष्टि न आवैं मन-चंचल ह्वै जाही ।।७१।।

सो विवेक नैं कामु सामु ही तव वैराग पठायौ ।
आइ महारण मै वोल्यो तहँ रिपु दल गर्व गँवायौ ।।

वैराग्य उवाच

अरे काम इह वाम जगत मैं महा नरक की सामाँ ।
हाड माँस अरु पीन रुधिर है, ऊपर लिपट्यौ चामाँ ।।७२।।

सवै द्वार मल वहै रैनि दिन इह स्वरूप है जाकौ ।
देखै वोलै छुये पाप यह लव ग्रंथ न मत ताकौ ।।
झूठौ सुख सोऊ इक छिनको नरक भोग वहु तासौं ।
नैंक विचारि देखियै तौ मनु होत महाघिन जासौं ।।७३।।

---

६८ विश्वमित्र के='ख' मे 'विश्वामित्र ।'
७१ ह्वै जाही = 'ख' मे सुधि ही ।

तात्रिय की तू करै बड़ाई कहै इहै बल मेरौ।
तनक रोस करि हरनैं जारौ कहाँ गयौ बल तेरौ ॥
जिन के चित मैं बसै आनि ते त्रिय तिनका सम जानैं।
रात भोग कूँ भार गिनै तू मिथ्या बल निज मानैं ॥७४॥

सुनि बैराग बचन तब डरि कैं काम देव तहँ भाज्यो।
महा मोह के दल ते कढ़ि तब लोभ आय रण गाज्यौ ॥

लोभ उवाच

लोभ कही मैं जहाँ विराजौ ताके गुण सब भाजैं।
भारो कौं हलुकौ करि डारौं औगुन तहाँ विराजैं ॥७५॥

फाँसी डारि वटोहिनि मारै हाथ कछू नहिं आवै।
सो वह मेरीयै अधिकाई निसिदिन हिंसा भावै ॥
सगरे जग मैं सबके मन में मेरौ ही नित वासा।
मेरे कारन जिएँ जीव सब, छिन-छिन बाँधें, आसा ॥७६॥

ऐसे वचन लोभ के सुनि कै नृप संतोष पठायौ।
आइ जुद्ध की भूमि तहाँ उनि लोभ हि वचन सुनायौ ॥

संतोष उवाच

अरे दीन क्यों घर घर डोलै सवहिन सीस नबावै।
हाथ कछू आवै नहिं बढ़ती लिख्यौ ललाट सुपावै ॥७७॥

लोभी जरौ करत चिंता मैं निसि वासर दुख रोवै।
संतोषी थोरे सुष मानैं पग पसार सुख सोवै ॥
हमरे वल सुन जिनके मन हम ते बैठे मन माँहीं।
तिन आगे कर जोरि नृपति वहु ठाढ़े रहत सदा हीं ॥७८॥

---

७६. मेरी यैं=मेरी ही।
७७ द्वितीय पंक्ति 'ख' मे नही है।

हमरी ग्रथनि माँहि वडाई तू खल निन्दा लायक ।
सुख सतोप समान नहिं दूजौ वचन कहे मुनि नायक ।।
मो आये तैं वश नसैं तव ज्यौ तम रवि के आगे ।
कहा जानि अपनी प्रभुता तू करत झूठ अनुरागे ।।७९।।

ऐसे सुनि सतोप वचन को लोभजु गयौ तहाँ तै ।
आइ गरव तव मोह ओरते वोलौ वचन रिसातै ।।
गरव कही मैं सर्वस नासो जाके हिय मे वासा ।
ज्ञान भक्ति वैराग्य लच्छमी करौ सवन कौ नासा ।।८०।।

जहाँ जहाँ मैं होंहुँ तासु की सदगति होनन पावै ।
नरक पठावन कौ मोसो अरु जग मैं द्रष्टि न आवै ।।
याते मोहि जोधा अति जानौ महामोह कूँ भाऊँ ।
वाके चित प्रवृति मारग की सो ही चाल चलाऊँ ।।८१।।

और दोष धर्मनि ते भाजे मोहिन कोड भजावै ।
याते मम समान कोउ दूजौ और दृष्टि नहि आवै ।।
वचन गरव के सरव सुने तव करि विवेक चित भायौ ।
इतते दौरि नम्रता रण मै गर्वहि वचन सुनायौ ।।८२।।

नम्रता उवाच

अरे कूर जिनके चित होते तोहि धूरि सम जानै ।
मेरे आये सकल धर्म सुख वढत जगत सव माने ।।
जामै तू तिहि के सव वैरी मै जहँ तिहि सव चाहै ।
वात प्रसिद्ध सत्रु जग जाकौ ताकी जीत कहाँ है ।।८३।।

तेरौ धारनहार हार तिहि मो धारे जय होई ।
अपनी अरु मेरी तू जग में प्रकट देखि लै सोई ।।
गरव होत जड फूल डारिये अरु सुनि मो अधिकाई ।
नल जल जड़हु गहै नम्रता सो ऊँचौ है जाई ।।८४।।

---

८० तव=तेरे

८०. तव मोह='ख' महामोह । रिसातै=क्रोध से ।

८३. सब मानै='ख' मे सव जानै ।

कहै पुरान नम्रता जिहि तिहि गरब सरब नसि जाँही ।
येते पर तू कहा बकतु है वृथाबाद रणमाँही ।।
भाज्यौ गरब झूठ तब आलयौ उततैं रण के माँही ।
महा मोह को है प्रधान सो, बोलौ यौ उहि ठाँही ।।८५।।

झूठ उवाच

झूठ कही मेरौ प्रभाव सब लोक लोक सु बषाने ।
मोही सो व्यौहार चलै इह सब ही जग में जाने ।।
राजहि रंक करौ सै छिन मैं धर्मी धर्म गवाऊँ ।
तनक बात मै आई प्रलै करि डारौ नरक पठाऊँ ।।८६।।

कहँ लौ कहौ वाल जदुवंसी मिथ्या बात बनाई ।
बोले झूठ रिषिन सो तासो कुल की नीब नसाई ।।
मेरे कारन धर्मपुत्र कौ नैनन नरक दिखायौ ।
याते मो समान बल औरै काहू नहि जग पायौ ।।८७।।

तुमरे जोधा जीवहि ऊँचौ लोक देन चित धारैं ।
हमरी यहै सबलता ह्वाँ नहि जान देहि अध डारैं ।।
सुनि कैं बात झूठ की इतते साँच बिबेक पठायौ ।
आइ महारण मै तहाँ बोल्यौ रिपुगण गरब गँवायौ ।।८८।।

सत्य उवाच

रे पापी ! क्यौ गरव करतु है, मेरे गुन नहिं जानैं ।
कैसेउ अपराधी सो छूटैं जो मुख साँच बखानै ।।
साँचे कौ सब कियौ साँच सों चलैं कुशल सों राजै ।
सूरज चंद्रमा साँच चलैं तैं अपने लोक विराजै ।।८९।।

शेष सीस पर सकल सृष्टि मैं राखत साँच निबाहैं ।
साँचहि सों आवै ग्रीषम अरु पावस सीत सदा है ।।
अरे झूठ मेरे सम क्यौ तू देखि विचारहि यामैं ।
झूठे नग अरु साँचे नग मै कितौ फेर कहु तामैं ।।९०।।

मेरे आगें यौ तू भाजै ज्यौं मृग वाघ निहारै ।
साँच समान न पुन्य और यौ सबै पुराण उचारै ।।
यौ सुनि झूठ भज्यौ त्योही सब महामोह दल भाज्यौ ।
कोऊ नहि ठहिराय सक्यौ तब रण विवेक दल गाज्यौ ।।६१।।

महामोह जानी नहि काहू भाजि गयौ किस वारी ।
इतै जीत की दुंदभि वाजी नृप विवेक कैं भारी ।
तवै सत्य सतोप शील सत सग सवै ढिग आये ।
किये प्रनाम विजय के नृप कौं सुमन सु सुर वरषाये ।।६२।।

तव विवेक के प्रगटचौ पुत्र प्रवोध महा सुखकारी ।
विद्या नाम सुता इक प्रगटी जग जन तारनि हारी ।।
बेद पुराण ग्रंथ सवहि मिलि मंगल शब्द उचारौ ।
जहाँ तहाँ आनँद रूप सौं राज समाज निहारौ ।।६३।।

मन कौं महा मलीन देखि कैं तव विद्या ढिग आई ।
भूलि निवारन कारण ताकौ सुखद रीति समुझाई ।।
काकौ सोच करै मन राजा सकल जगत भ्रम जानौ ।
मात पिता त्रिय पुत्र सहोदर ये सव झूठे मानौं ।।६४।।

पवन पाइ ज्यो पात इकट्ठे आइ होत इक ठाँही ।
एक पवन ऐसी ज्यो आवै पृथक पृथक है जाही ।।
त्यो सव जग के सगी जानौ इन सो मोह न कीजै ।
जुआँ कीट तन ते उपजै त्यो क्यो न मानि सुत लीजै ।।६५।।

जो जो दृष्टि परै आँखिन सो सो सो सव नसि जाई ।
अविनाशी निज रूप आतमा कवहूँ कहूँ न जाई ।।
तब मन कही कुटुम्ब नेह यह छूटै हिय तै नाही ।
क्यों कर तजौ चित्त कीअतिरुचि त्रिय सुत धन घर माँही ।।६६।।

---

६२. किस वारी=किस समय
६७ इहि वारी=इस समय ।

देवी कही मोहमइ माया सो तैं हिय अब धारी।
तातैं माया की सु कथा इक, कहौ सुनौ इहिवारी ॥

कथा

मालव देश भयो इक ब्राह्मण गाध नाम है जाकौ।
धर्म कर्म जप तप संजम मे महानेह है ताकौ ॥९७॥

एक समय जल मै प्रवेश करि आठ मास तप कीनौ।
ताकों धीरज देखि विष्णु जू आइ सु दर्शन दीनो ॥
कही वाहिरैं आउ विप्रवर माँग जु मन मै होई।
इन माँग्यौ प्रभु माया तुम्हरी देख्यौ चाहत सोई ॥९८॥

एवमस्तु कहि अंतरधान भये भगवान तहाँ ही।
ता दिन तै वाके चित माया देखन की बहु चाही ॥
एक द्यौस जल मध्य न्याह कैं, ध्यान धरौ हो ज्यौही।
देखन कहँ जब आयौ घर तहँ देह गई छुटि त्यौही ॥९९॥

रोवत सबै कुटुम्ब गोद लै जननी चूमत मुख कौ।
पुनि लै गये नदी तट कीनी क्रिया पाय अति दुख कौ ॥
जाइ जनम लीनौ चँडाल घर बाल-बिनोद सुकीनौ।
पुनि बिबाह किय मात पिता नै महामोह मनु लीनौ ॥१००॥

तरुणी सग लिये वनवन मैं बाग तड़ागन धावै।
पुनि सतान भई तिनके सग खेलत मोद बढावै ॥
एक समै त्रिय लैके सुत कौ निज पितु गेह सिधारी।
वहाँ काल बस भये कुटुम्ब के लोग सबै तिंहि वारी ॥१०१॥

इहू चल्यौ जु हूण मडल ते पुर इक मग मै आयौ।
कोर देश वह अति प्रसिद्ध है, पुंन्य जोग तै पायौ ॥
भूप मरौ हो वहाँ, सबै मत्रिन मिलि मत्र विचारौ।
या नृप के कोउ वश न अरु यह देश चाहिये पारौ ॥१०२॥

---

१०१ वहाँ काल वस='ख' ह्याँ काल वसि।

१०२ भूप मरौ....विचारौ='ख' मे "वहाँ को भूप मरो हो वहाँ के मंत्रिन मत्र विचारौ।"

यातैं प्रात समैं जो आवै भूपति कीजै ताही ।
ऐसे सब अधिकारिनि मिलिकैं यहै वात हिय चाही ।।
यह कहुँ प्रात कढ्यौ तव वहाँ के लोगन यह नृप कीनौ ।
लाग्यौ भोग भोगनैं वहु विधि राजकाज सुख लीनौ ।।१०३।।

छत्र सीस पर चोर ढरत हाथी घोडा दल साजै ।
चलै सिकार प्रताप वढ्यौ वहु द्वार दुंदुभी वाजे ।।
वहुत सुन्दरी संग लै वागनि रागरग नितु करई ।
स्रगवल नाम भयौ याकौ तहँ सत्रुनाश व्रत धरई ।।१०४।।

आठ वरष तहँ राज करौ वहु सत्रुनास इन कीने ।
इक दिन एक वाग मै वह तिय चडालिनि सुत लीने ।।
उतरी हुती तहाँ इह आयौ नृपहू त्रियन लिये ही ।
देखि पिताकौ पुत्र श्वपच वह लाग्यौ दौरि हिये ही ।।१०५।।

रोइ उठी चडालिनि तरुनी क्यौं त्रिय पुत्र विसारे ।
सव रानी मिलि देखि रही कहै कर्मनि भोग हमारे ।।

रानिनि जाइ गुरुहि सौ पूछी क्यौ यह दोप नसाई ।
कही सु गुरु तनु दहौ अगिनि मैं परस दोष मिटि जाई ।।१०६।।

तव सव रानी जरी अगिनि मे भिन भिन चिता वनाई ।
मंत्री मित्र महा घिनि करि कैं वहु उपास मति लाई ।।
इहि लज्जा इहहू चडार तव जरौ अगिनि के माही ।
इते माँझ या विप्र गाधि की खुली आँखि उहि ठाँही ।।१०७।।

देखैं वह तौ जल मैं ठाढौ सँग के जप तप करही ।
भयौ महा संभ्रम इह मन कौ आयौ पुनि निज घर ही ।।
सोचै चित कौ मरौ कौन चडाल भयौ को राजा ।
कौन जरचौ हौ तौ यह जल मैं कैसो सुपन समाजा ।।१०८।।

---

१०६ कर्मनि योग हमारे='ख' मे "कर्म योग है हमारे ।"

एक दिना इक अतिथि गाधि कै आइ सु भोजन कीनौ ।
ताकौ यह पूछी किहि कारन तनु दुर्बल बल हीनौ ।।
अतिथि कही कछु दुक्ख हमारे गाधि कह्यौ नहि जाई ।
कीर देश मै मास ग्रेक हम रहे महा सुख पाई ।।१०६।।

राजा वहाँ इक स्निगवल वरषै आठ राज उहि कीनौ ।
धुनि वह जाति चंडाल कह्यौ तब सब लोगन तजि दीनौ ।।
रानी जरी अगिनि मै सगरी प्रजा महा दुख पायौ ।
उनहूँ नृपति खिस्याइ देह निज पावक माँहि जरायौ ।।११०।।

एक माह हमहूँ वाके दरवार अन्न नित लीनौ ।
आइ गयौ गिल्यानि मोहि हूँ देश त्याग वह दोनौ ।।
जाइ प्रयाग करे हम बहुते स्नान दान व्रत भारी ।
अपनी शुचिता कारन यातें दुर्वल देह हमारी ।।१११।।

विद्या कही सुनौ मन राजा गाधि सुनी यौ वानी ।
वड़ौ अचंभौ भयौ चित्त कौं वात साँच सी सानी ।।
चल्यौ हूण मंडल पहिले ही जाइ गाउ वह देख्यौ ।
चेई ठौर जहाँ हो डोलौ घरहु दूर ते पेख्यौ ।।११२।।

वहुरि चल्यौ द्विज कीर देश कौं त्यौही तहाँ निहारौ ।
लखे राज मंदिर वन उपवन जहँ जहँ हुत्यौ विहारौ ।।
पुनि वे लखी चिता जिहि रानिन देह आपनी जारी ।
वहुरि आपनी चिता निहारी भयौ अचंभौ भारी ।।११३।।

देखि चल्यौ ज्यौही द्विज वह तहँ सुत चँडार वह देख्यौ ।
वह इह को लखि दौरि लग्यौ उर पिता आपनौ पेख्यौ ।।
विप्र छुड़ाय भग्यो वह पाछैं रोइ पुकारत आवै ।
तजै जात क्यौ तात मोहि अव ऐसे टेरि सुनावै ।।११४।।

---

११२. वहुते=वहुत अधिक

ह्वाँ राजा के लोग हुते तिन भागत द्विज गहि लीनौं।
रोवत वालक की धुनि सुनि पुनि दोउ न इकठौं कीनौ ।।
पूछन लगे कहाँ तू भाग्यौ वालक क्यौ यह रोवै।
कारन कह इक मुनि कैं ब्राह्मन मोन भयौ मुख जोवै ।।११५।।

वालक वोलौ पिता हमारौ यह हम कूँ गहि दीजै।
छाडै जात मोहि वह दिन मैं मिल्यौ कृपा यह कीजै ।।
गाधि कही हौ तो ब्राह्मन हौ मालव देश रहौ जू।
जप तप नेम महा व्रत सजय धर्म लिये निवहौ जू ।।११६।।

या कौ हौं पहिचानत नाँही पिता कहतु है कैसें।
तव वालक वोलौ सुनिये जू वात सवै है जैसे ।।
जाति चँडारन ब्राह्मन हैं इह हून देश सव जाने।
कै ह्वाँ के जन वोलौ कै ह्वाँ देहुँ पठै ज्यौ माने ।।११७।।

यह सुनि नृप के जन नृप आगै तवै दुहुन कों लाये।
राजा सुनि कै दुहूँ देश के लोग तहाँ सु वुलाये।
पूछी सव को साँच कहो तुम इह सु कौन जन आही।
मालव के वोले इह तौ द्विज गाधि नाम है जाही ।।११८।।

उतै चँडार पुकार कहै इह है चँडार द्विज नाँही।
राजा न्याय सकै न कछु करि सौचै निज मन माँही ।।
द्विज यह कहै विप्र यह तपसी कहै चँडार-चँडारें।
कीजै कहा कछू निरधारन होत सुचित्त विचारैं ।।११९।

तव नृप कही कडाह मगावौ तप्त तेल इहि डारौ।
जौ न जरै यह ब्राह्मन है तौ जरै चँडार निहारौ ।।
इह सुनि कीर देश के वोले महाराज यह सुनिये।
यह चेटकी चँडारिनि जरिहै इहौ वात सुनि गुनियै ।।१२०।

आठ बरस ह्यों राज करौ इन सिसुहौ तब पहिचानौ ।
तब रानी सब जरी अगिनि मै परस सुपच सों मानै ।।
इहू जरौ इहि ठाम आइ अब ब्राह्मन रूप दिखायौ ।
इह तौ सत्य चँडार चेटकी कीजै जो मन भायौ ।।१२१।।

जैसे इह नहि जरौ चिता मै तैसे ह्याँऊ न जरि है ।
याहि मारिये बेगि महीपति नहि चेटक कछु करि है ।।
यह सुनि गाधि कही हो राजा हौं न जरौ किहु ठाँही ।
ह्यौ न चँडार चेटकी हौ नहि हौ द्विज मालव माँही ।।१२२।।

कौन पाप यह लोक लग्यौ अपलोक नही हौं जानौ ।
कौनहि देऊँ शाप अरु काकौ बुरौ चित्त मैं मानौ ।।
परुषारथ ते ब्राह्मन हौ ये क्यौ-चंडार बखानै ।
कौन हेत ये कहत चेटकी कर्म सुगति को जानै ।।१२३।।

कीर देश के बोले जो द्विज शाप देहि किन आछैं ।
निश्चै है चंडार तू तेरे मारे पाप न पाछैं ।।
चारौ ओर कहै सब यौंही नृप इहि मारो चहिये ।
तब नृप कही सिखा मंडित यह करौ बिलब न गहियै ।।१२४।।

उपबीतहि उतारि गाधि इहि वेगि चँडार सँवारौ ।
मालव देश जाइ मेरे जन ह्वाँ ते याहि निकारौ ।।
ज्यौही सिखा गई मुंडन कूँ भई अकाशहि वानी ।
भूलौ जिनि यह विप्र गाधि है सुनि निश्चै नृपमानी ।।१२५।।

सुनि अकाश वानी भ्रम भाग्यौ भूप दौरि पग लाग्यौ ।
आसीस दे तब गाधि गयौ घर चित विराग तब जाग्यौ ।।
करी तपस्या बहुत तबै भगवान दरश तिहि दीनौ ।
उन अस्तुति करि कही यही प्रभु मोहि सुपच क्यौ कीनौ ।।१२६।।

श्री भगवान कही तै माया देखन कौ चित चाह्यौ ।
तातै यही दिखायौ तो मै जिहि मरन जनम अवगाह्यौ ।।
तू नहि उनको सुपच कीर कौ तू नहिं भूप भयौ है ।
यह सब झूठ निहारि विप्र यह माया चरित्त ठयौ है ।।१२७।।

तातैं भ्रम तू छाँडि ब्रह्म मैं लीन होहु द्विजराई।
यह कहि अ तर्धान भये प्रभु गाधि समाधि लगाई॥
कै मन सुद्ध आपनो जग मे विचरौ आनँद माँही।
जीवन मुक्ति दशा द्विज पाई, रह्यौ चित्त भ्रम नाँही॥१२८॥

यह माया की कथा सुनाई तातें सुनि मन राजा।
जनम मरन अरु सँग सबै भ्रम जानहु जगत समाजा॥
तब मन कही सु विद्या देवी ऐसी सीख सिखावहु।
जातें निरमल ह्वै सुख पाऊँ मोही मारग लावहुँ॥१२६॥

तब विद्या बोली मन राजा मारग सुगम बताऊँ।
जिहि उपदेश तरे भव जन वहु सो अब तुम्है सुनाऊँ॥
प्रथम धरौ वैराग जगत सौ अति उदासता ठानौ।
जो जो कछु लखिवै मैं आवै सोइ विनासी मानौ॥१३०॥

मात पिता त्रिय सुत कुटुम्ब ये संगी जानों नाँही।
नदी नाव कौ जोग बन्यौ है, बहुरि जिते ित जाँही॥
कैसोउ प्रीतम होइ जगत मै सग चलै नहिं कोऊ।
अप अपने सुख कौ सो रौवै इक सौं रहै न सोऊ॥१३१॥

प्रान छुटै या प्रानी के तब नेह कुटुम्ब निहारौ।
जिनको अति प्यारो तेई सब भाषै वेगि निकारौ॥
तात पिता अरु मात तिया सब यौही वात कहै है।
हय हाथी भूपन भँडार सब डार एकलो जै है॥१३२॥

कोटिन द्रव्य धरे कोठिन मैं कोठिन तेउ विलाने।
सबै धनी मैं करनी जिन की तेऊ जात न जाने॥
आयु कहै सत वरप सु आधी सोवत माँहि विताई।
कछू रोग कछू सोग माँहि कछु उद्यम ढूँढत जाई॥१३३॥

कछू बिदेस नरेस चाकरी ता मधि कछू विहानी ।
कहौ जीव कौ सुक्ख कहा जो मानि रह्यौ अभिमानी ।।
लाख लाख बरषन जे जीये तेऊ सुने सिधारे ।
तीनि लोक जीते जिहि रावन तेऊ काल पछारे ।।१३४।।

जीवन तौ अँजुरी को जीवन इक पल की सुधि नाँही ।
याते याहि चाहिये जन कौ रचै न हित जग माँही ।।
बालपने मैं कह्यौ तरुन ह्वै करि हौ धरम विचारी ।
तरुन भये वृद्धापन पै तब दृष्टि धरम की धारी ।।१३५।।

वृद्ध भयौ लयौ गोद मृत्यु नै श्रवनहिं समयौ आगैं ।
जाकों तू बताइ है मूरख करि हौ धरम सु जागैं ।।
मृत्यु मात जग की जानौ मै अद्भुत रीति निहारी ।
वह सिसु गोद लेनि यह वृद्धहि राखत गोद मँझारी ।।१३६।।

वह सुगोद लै रूप सँवारत यह कुरूप करि डारै ।
वह सु उदर ते काढ़ति यह वाहिर ते उदरहि धारै ।।
सकल जगत की भजनहारी सिर पर मृत्यु विराजै ।
ये ते पर यह चेततु नाँही भूलि ताहि सो गाजै ।।१३७।।

अपनी आँखिनि लखै वड़े अरु छोटे चले सजाहीं ।
तू सो बीच मै कैसे बचि है समझ इती चित माँहीं ।।
जो जो मिलौ बिछुरि है सो सो यह निश्चै करि जानौ ।
कछू न थिर या जग मैं रहई भूलि नेह जनि ठानौ ।।१३८।।

और सुनौ अपने चित माँही करै बिचार इतो है ।
या जग मै दुख आठ पहर है सुख कौ रूप कितौ है ।।
कोऊ छिन सुख जीभ कोऊ छिन तिया संग सुख मानौं ।
सोऊ क्षधा अरु बल अधीन है नही तौ बहू बिलानौ ।।१३९।।

---

१३७ ताहि सों गाजै='ख' में, फल लों गाजै ।

साठ घरी मै सुखन घरी कौ दुख चिरकाल रहाई ।
रोग अंग पीड़ा नृप पीडा त्रास अनेक महाई ।।
दुख कौ चिन्ह वहुत है जग मै जिनसो दुख पहिचानौ ।
रुदन विकलता दीन शब्द वहु जिन सुनि करुना आनौ ।।१४०।।

सुख कौ चिन्ह वतावौ को है क्योकि जगत सुख नाँही ।
यातै सब जग जानि दु.खमय रहिये आनँद माँही ।।
तातै यह संसार असार निहारि सु सार विचारौ ।
अपने चित तै सुनि मन राजा सकल दु-ख निरवारौ ।।१४१।।

पहिले है वैराग विसै सौ अपने चितै डिठावौ ।
ता पाछे भगवान भगति सों नीकी प्रीति लगावौ ।।
अब मुनि भक्ति सरूप सुगुन की परम कृपा प्रभु कीनी ।
सो नव विधि है बेद वखानी कहौ परम रस भीनी ।।१४२।।

पहिली भक्ति श्रवन सौ प्रभु की कथा सुरुचि सो सुनिये ।
सो वह करी परीक्षित राजा श्री भ.गवत सु गुनिये ।।
दूजो है कीर्त्तन प्रभु कौ जसु परम मोद सों कहिये ।
श्री शुकदेव भेद जानों तिहि महालीन मन लहिये ।।१४३।।

तीजी सुमिरण ध्यान कहै जिहि सो प्रहलाद सभाई ।
चौथी पग सेवन सो लछमी करतु सदा चितु लाई ।।
भक्ति पाँचवी अर्चन पूजा सो राजा प्रभु कौनी ।
छठी भक्ति वदना दडवत सो अक्रूर हि दीनी ।।१४४।।

दास भाव सातइ पवन गुत सो कीनी चितु लाई ।
सख्य भक्ति आठई सखा है सो अर्जुन चितु पाई ।।
नवी भक्ति आत्मा समर्पन सो राजा वलि कीनी ।
पूरण भक्ति प्रेम दसई सो ब्रज वालनि वह लीनी ।।१४५।।

ऐसे प्रभु में किहूँ भाँति चितु श्रद्धा जुत ह्वै राखै ।
तौ इह जीब अविद्या ते छुटि भव सागर कौ नाखैं ।।
अव सुनि ज्ञान रीति चेतन कौ निर्विकार जिय जानै ।
निराकार निरलेप निरजन ताकौ वेद वखानै ।।१४६।।

सुख दुख हर्ष सोक ये जग के ब्रह्म रूप मैं नाहीं ।
अद्वितीय परमानंद वह है व्याप्यौ चर थिर माँही ।।
ब्रह्मा ते चीटी लौं अरु गिरि रजकण रूप वही है ।
बहु विधि सृष्टि दृष्टि जो लखियत सो वह आप सही है ।।१४७।।

अद्भुत रीति ब्रह्म की लखि ही सब में सबतें न्यारौ ।
सब कुछ करै अकर्त्ता पुनि वह ऐसौ सरजन हारौ ।।
कछूक ताकी अद्भुत गति तौ सेवक ह्वै मुनि जो है ।
अपने दृग देखैं सब पै न विचारै कर्त्ता को हैं ।।१४८।।

प्रथम लहि इक नीर बूँद ते सकल शरीर बनाये ।
कहौ कहाँ वे हुते बूँद मै किनहूँ भेद न पाये ।।
कहौ बीज मै बृक्ष कहाँ हौ कढ़ि अकाश जो लाग्यौ ।
कहाँ तें भरी मधुरता फल में जिहि भवि जिय दुख भाग्यौ ।।१४९।।

रंग-रंग के फूल उपाये कहौ कहाँ रँग लीने ।
ऐसे अद्भुत कर्म बहुत प्रभु या प्रकार हैं कीने ।।
यातै कर्त्ता और अकर्ता यह विधि वाही सो है ।
वाहौ कौ अनुभव नित कीजै सो माया नहि मोहै ।।१५०।।

यह सुनि मन वैराग जुक्त ह्वै भक्ति ज्ञान मनु लायौ ।
ह्वै समाधि मैं आधि व्याधि तजि परमानँद पद पायौ ।।
यह नाटक जब लख्यो नृपति नै चित औरे गति छायौ ।
दाढ़ी सकल जगत की विषया, परमानंदहि पायौ ।।१५१।।

कीर्त्तिवर्म राजा गोपालहिं बहुत धन्यता दीनीं ।
जगत काज ते चित उदास करि भक्ति परम गति लीनी ।।
जो कोउ याहि सुनै रु सुनावै सोउ परम गति पावै ।
'सूरति' सुकवि धन्य वह जग में किहु विधि हरिगुन गावै ।।१५२।।

इति श्री सूरति सुकवि विरचित प्रबोधचंद्रोदय नाटक भाषा सम्पूर्णम् ।।

———

१५२ 'ख' मे द्वीतीय पंक्ति दढयो हुतो जग के विषई, ज्यो पै परमारथ पायो ।

रस-रत्न

रस-रत्न

मंगलाचरण

दोहा

कमल-नयन कमलद वरन, कमलनाभि कमलाय ।
तिनके चरन-कमल रहौ, मो मन जुत गुन जाय ।।१।।

नव-रस

दोहा

नव रस आदि सिगार पुनि, हास्य करुन रुद बीर ।
भय विभत्स अद्‌भुत वरनि, शान्त परम गुन धीर ।।२।।

शृंगार-रस-लक्षण

दोहा

'सूरति' सतत रहत है, रति कों पूरन अंग ।
ताहि कहत सिगार रस, केवल मदन-प्रसग ।।३।।

नायक-नायिका-वर्णन

सो इह रस सिगार में, बरनत कवि रस-लीन ।
प्रथम नाइका-नाइकनि, बहुरि क्रियानि प्रवीन ।४।।

---

१. कमलद=क—कमलदल, ख—कमलदल, ग—कमलदल, घ—कमल-दल । कमलाय=ख - कमलाप । जाय=ख—जाप ।

२. रुद = ख—रुद्र ।

३. 'सूरति' = 'क' मे सर्वत्र 'सूरत' है ।

४. रस-लीन='क' मे 'रसलीन' है जो रसलीन कवि का भ्रम पैदा करता है, किन्तु रसलीन कवि के 'रसप्रबोध' मे यह छद नही है । अतः 'रसलीन' का शुद्ध पाठ रस-लीन है जिसका अर्थ है—रस मे निमग्न रहने वाले ।

कवित्त

सुकिया विवाहिता, सहित लाज, सेवै पति,
परकीया रमैं पर-पुरुष प्रमानिये ।
गनिका रमति धन चाहै तहँ, सुकिया के,
भेद तीनि, मुग्धा मे लाज अति जानिये ।
मध्या लाज काम सम, प्रौढा काम रस अति,
'सूरति' कहत मुग्धा द्वै तहाँ मानिये ।
जोबन कौ तन में न आयौ जानै सो अग्यात,
जानत है आयौ, सो ही ग्यात है बखानिये ।।५।।

दोहा

नव दुलही दिन दुत बढै, नव तरुनी सँधि-पाइ ।
नव कामा सिसु बचन छल, रति में लज्जा आइ ।।६।।

ककुभा छंद

मध्या एक अरूढ यौवना, प्रगल्भ वचना जानौ ।
प्रादुर्भूत अनंगा बहुस्यौ, सुरति विचित्रा मानौ ।।
प्रौढा इक समस्त रस चतुरा, चित विभ्रम दुति सानी ।
आक्रामित मन वच क्रम बस पिय, लब्धा पति कुलमानी ।।७।।

दोहा

साधारन अरु पतिव्रता, स्वकिया दुविधि बखान ।
खँडिता तीजै भेद तैं, साधारन मे जान ।।८।।

---

५. सहित—'ख' एव ग—सहित 'क' सहिन । सेवै—'क' मे सेवा । द्वै = ख—सु ।

६. वचन = 'क'—वचस ।

७ चित = 'क'—चित्र ।

कवित्त

परकीया व्याही अनव्याही ऊढा अनूढ़ा है,
तहाँ पट भेद गुप्त रति कौं दुरावई।
क्रिया औ वचन में करति चातुरी विदग्धा,
जाकी प्रीति लेखे सखी लक्छिता कहावई ।।
वहु नर रमैं कुलटा है, पिय को मिलन,
'सूरति' सुनै तैं मुदिता सो सुख पावई।
थानो विनसै सहेत, आगैं हीय कैं न होइ,
पहुँचे न अनुसया ना सो तन तावई ।।९।।

उदाहरण

दोहा

आज वाग संकेत कैं, सुनि पथिकनि को वास।
काहे तैं यह मलिन मन, वैठी निपट उदास ।।१०।।

पित्रादि परतंत्र सु कन्या, जाहि सुरति अति गूढ।
पित्रादि विक्रता स्वदासी, द्वै विधि जानि अनूढ़ ।।११।।

अष्ट नायका

कवित्त

पति है अधीन जाकैं, है स्वाधीनपतिका सो
क्यों न आयौ पिय सोचै उत्का वखानिये
लखति वासकसज्जा करिकें सिगार मग,
भोर आवै पति जाकौ खंडिता प्रमानिये।
मानै न मनायें पाछै नचै कलहांतरिता
पिय है विदेस जाको प्रोपिता सु मानिये।
'सूरति' सु विप्रलब्धा पावै न संकेत पिय,
वोलैं जाय मिलै अभिसारिका सु जानिये ।।१२।।

---

८. दुविधि='क' द्विविधि। खडिता—तैं='ग'—खंडितादि जे भेद ते।
९. सहेत—ख—सहेट। 'ख' प्रति मे इस छद की क्रम संख्या १० है।
थानो—सहेत='ग'—थान विनसैं सहेंठ।
११. अनूढ=ख—अगूढ।
१२. प्रमानियै='क' एव 'ख'—वखानियै।

दुहा

प्रेम काम वस मद लिये, त्रिय अभिसारिक सोइ।
जौन्ह अँध्यारै गमन तैं, सुक्ला कृष्णा होइ ॥१३॥

कवित्त

सुनै पिय गौन प्रात प्रतिकाप्रवत्स्य सोई,
रूप प्रेम गुन कुल गर्विता कहावही ॥
और तिय के सँभोग चिन्ह देखि पावे दुख,
अन्यसभोगदुखिता कहिकै गनावही ॥
जेष्ठा सु जापै अति प्यार, घटि सो कनिष्टा
धीरा कोप दुरै वाक चौगुनी सुनावही ॥
कोप न दुराइ जानै परुष कहै अधीरा
धीराधीरा कोप गोप प्रगट जनावही ॥१४॥

दोहा

प्रौढा धीरा सादरा, आकृति गुप्ता होइ।
आदर मान अनादरै, आकृति दुरवै सोइ ॥१५॥

कवित्त

उत्तमा ते अपमान करैहू न मान करै
मध्यमा ते जैसे देखि तैसे अनुसरही।
अधमा विनहि काज रूठै चारि जाति सुनौ
पद्मिनी सहज सुवास मन हरही।
चित्रनी चतुर चित पिय वनी ठनी देह
सखनी सकोप देह लाँवी डगे धरही।
ठेगनी सथूल अंग हस्तनी कहत वर्नि
इनकौ विस्तार कवि ग्रन्थनि में करही ॥१६॥

---

१३. प्रिय अभिसारिक=='ग'—त्रिविधि अभिसरत।
१४. धीराधीरा='क'—धीरा।
१५. दुरवै=छिपाये।
१६. लाँवी=लम्वी, दूर-दूर।

चार दर्शन

कवित्त

चित्र मे जो देखिये सो चित्र दरसन देखै
सुपन में सुपन दरसे ताहि कहिये।
प्रतिच्छ के देखै कहै साक्षात दरशन
पुनि-श्रवन दरस सुने कानन तैं गहिये।
एक गाँव वसै अनमिले पूर्वानुराग
विदिस प्रवास औ करुन दुख दहिये।
आनहू विरह सो त्रिविधि लघु मध्य गुरु
होहि देखै बोले चिन्ह आॅन तिय लहिये ।।१७।।

उत्तर

दोहा

औरु तरुनि सम्बंध ए, ईर्षा जन्य सु जानि।
और प्रकारन ते हुवै, प्रणय जन्य ते मानि ।।१८।।

दोहा

द्विविधि सिंगार सँजोग इक, कहि वियोग कवि आदि।
तहँ वियोग श्रुति चार विधि, पूरव अनुरागादि ।।१९।।

दोहा

एक मनोरथ हेतु कैं, विरह जु उतका माहिं।
सापज दूजो दोष विनु, गुरु कैं उपजै नाहि ।।२०।।

---

१७. आॅन=अन्य।

१९. पूरव—'ख'—पुर्वा।

दोहा

विप्रलंभानंतर सु तिहि, नाम कहत सुख दानि ।
विप्रलंभ चित कों भये, होय जोग यह जानि ।।२१।।

दोहा

अनुत्पन्न विप्रलंभ तिहि, नाम कहत कवि लोग ।
अकसमात लखि चित्त लगै, दूजौ यह संजोग ।।२२।।

दोहा

तहाँ प्रछल प्रकास विधि, दंपति जानै जासु ।
कै निज सम अलि प्रछल सों, सब जाने सुप्रकासु ।।२३।।

दोहा

प्रेम सोभ अरु परमघिर, शिव-गौरीनि मजिष्ट ।
नील हीन-थिरु राम सिय, राग कुसुंभन शिष्ट ।।२४।।

दश-वशा वर्णन

कवित्त

नैन मन वैन तन मिल्यौ चाहै अभिलास,
मिलिये सु क्यौ करिये चिता दुख दानियैं ।
पिय गुन गुनिवौ सु है गुन-कथन रस,
सुमिरन सोई इसमृति कै वखानिये ।
सुखद दुखद होत उद्वेग व्यर्थ वचसो ।
प्रलाप रोवै हँसे उनमाद मानियें ।
व्याधि अंग विवरन जड़ता सौ जड़ भये,
दसही अवस्था सौ तौ मरन प्रमानिये ।।२५।।

---

२१. विप्रलभ चित—मूल प्रति में इस दोहे की संख्या २२ दी गई है। आगे अन्य छंदो पर भी लिपिकार ने २२ से आगे का क्रम ही चलाया है।

२३. 'क' प्रति में इसकी क्रम संख्या २४ है।

२४. 'क' प्रति मे इसकी भी क्रम संख्या २५ है।

चोपाई

चक्षु राग चित्त संग संकल्प ।
निद्रा छेदन तनुता अल्प ।
विषय निवृत्ति त्रषा कौ नासु,
उन्मत जड़ता अंत दसासु ।।२६।।

कवित्त

वचन रचन सौ मनावै ते उपाय साम,
मिस सों दै भेट तेई दान के उपाइ है ।
सखी फोरि लीजे भेदू पाइ परै प्रनति है,
औ प्रसंग कै छुड़ैये उपेच्छा कहाइ है ।
प्रसंग विधंस डर दै छुटैयै मान,
जहाँ ए षट उपाय मान मोचन के भाइ है ।
'सूरति' सुकवि स्वयं दूत तासौ कहत है,
दूतपनौ करै जहाँ दपति बनाइ है ।।२७।।

भाव-वर्णन

कवित्त

मन को विकार भाव, बोधक सो अनुभाव,
हेतु रस है विभाव, द्वै विधि सो गहियै ।
आलंबन जिन्है अवलंबे रति पति रस,
दीपन करै जो सोई उद्दीपन कहियै ।
स्थंभन, स्वेद, स्वर-भंग, कंपन, विवर्ण अश्रु,
रोमंच प्रलय विधि सात्विक सो लहियै ।
रति, हास, सोक, क्रोध, उछाह रु, भय, निदा,
विस्मै, [illegible]ताई, भाव नीके जानि रहियै ।।२८।।

...ा २७ है ।
।, वाक्—चातुरी ।
... सिद्धान्त में यही छंद संख्या ८

स्थायी भाव का लक्षण

दोहा

आदि अन्त ठहराइ जो, रस कैं थाई भाव।
विना नियम उपजै रसनि, विभिचारिनि सँग नाँव ॥२९॥

कवित्त

निर्वेद, ग्लानि, सका, गरव, अमर्ष, चिंता,
मोह, दीनता असूया, इसमृतिय, जानियै।
मद, श्रम, उनमाद, आलस, हरष, क्रीडा,
जड़ता अवेग घृति भय मानियै।
आकृति गुपति चपलता औ अपसमार,
उतकंठ निंद्रा औ सुपन वोध ठानियै।
उग्रता. विषाद, व्याधि, वितरक, मृत्यु-जुत,
एई सब विभिचारी भाव कै वखानियै ॥३०॥

दोहा

रत्यादिक थाई जु है, थिर न होहि जिहि ठाम।
तहँ इन हूँ कौ जानियै, संचारी गुन धाम ॥३१॥

हाव-वर्णन

कवित्त

सिंगार के भावते क्रिया जे उपजं ते हाव,
प्रेम तैं जु भूले लाज हेला हाव जानियै।
भेप धरि लीला करै लीला हाव ललित सु
वोलनि चलनि सुकुमारता वखानियै।
गर्व वढै मद हाव विभ्रम विचल वास,
वोलि सकै लाज तैन विहुती प्रमानियै।
चातुरी चितौनि क्रिया वोलनि विलास चारु,
क्रोध भय हर्ष किलकिंचित में जानियै ॥३२॥

---

२९. काव्य सिद्धान्त मे भी यह छद सख्या ८६ पर है।

३०. क्रीडा—'क' क्रीड़ा।
भाव—'क' नॉव।

३१. 'क' प्रति मे इसकी क्रम संख्या ३० दी गई है।

३२. जानियै—'क' मानियै। 'क' मे इसकी क्रम सख्या ३१ दी गई है।

कवित्त

भूषन अनादर करै बिछिति औ विव्वोक,
पिय कौ अनादर कपट के गुमान सौ।
बुद्धि बल सात्विक दुराइबो 'सु' मोट्टाइत,
कुट्टमित केलि सुख दुख के प्रमान सौ।
परासय बोध जहाँ बोधक कहत ताहि,
'सूरति' सुकवि जानै परम सयान सों।
प्रीति प्रगटन हेत दंपति करै जो कछु,
तिन्है कवि कहै सब चेष्टा बषान सौं ॥३३॥

दोहा

तपन हाव तहँ विकलता, मुग्ध-मुग्ध सी बात।
कछु भूषरण बिच्छिति हसित, चकित केलि विख्यात ॥३४॥

अलंकार तरुनीन के, अष्टबिस परकासु।
तिन मैं अंगज तीन है, भाव हाव हेलासु ॥३५॥

सात अयत्तज सोम है, प्रकृतिज और गनाइ।
तहाँ भाव मन की विकृति, प्रथमहि कह्यो सुनाइ ॥३६॥

हाव सु मदन विकार तन, हेला अति प्रगटाउ।
अवर अयत्नज सात तें, सोभा आदि गनाउ ॥३७॥

तन दुति सोभा मैंन जुत, कांति दीप्ति अति सोइ।
ज्यों तिय रहै सुहाय त्यौ, वहै माधुरी होइ ॥३८॥

निधरकई सु प्रगलभता, विनय सील जहँ होइ।
है उदारता धीरता, मन अचपल विधि सोइ ॥३९॥

नायक लक्षण

सहित रूप गुन तेज-धन, दाता तरुन प्रवीन।
सो नाइक विधि चारि तहँ, वरनत परम प्रवीन ॥४०॥

---

३३. 'क' में इसकी क्रम संख्या ३२ दी गई है।
३४. 'क' मे इसकी क्रम सख्या ३३ दी गई है। आगे भी क्रम संख्या इसी प्रकार मिलती है।
३८ दीप्ति—'क' दीधि।
४०. तरुन= 'क' करुन।

कवित्त

एक निज नारी ही सों हेत अनुकूल सोई,
बहु नारी प्रीति सम दच्छ मन मानियै ।
मीठी सुख कहे सठ धृष्ट कौन लाज कहूँ,
स्वकिया कौ पति ताहि पति कै प्रमानिये ।
परकीया-पति उपपति गनिका को पति,
वैसिक कहत रस ग्रंथनि वखानियै ।
'सूरति सु कवि ऐसे मानी अनभिज्ञ आदि,
और नाइकनिहू के भेद बहु जानियँ ।।४१।।

दोहा

सुखी अर्चित कला-निलय, धीर ललित सुकुमार ।
सुचि बिनीत क्षुतिगुन सहित, धौर सांत निरधार ।।४२।।

जय जुत धीरोदात्त कहि, सव्रत छमी गंभीर ।
निज गुण वक्ता गर्व छल, जुत वह उद्धत धीर ।।४३।।

दोहा

उत्तमादि ज्यो नाइका, त्यों नाइक हू जानि ।
चतुर चतुर प्रत्येक त्रय, अड़तालीस बखानि ।।४४।।

दोहा

प्रति नाइक गुन सहित पै, अनुचितकारी होइ ।
उप नाइक नाइक सद्रस, पूजनीय पर सोइ ।।४५।।

नाइक सुभ गुन कछु कपटि, अनुनायक वह नाम ।
अरि पत्नी प्रति नाइका, कै प्रतिनाइक वाम ।।४६।।

---

४१. नाइकनिहूके=नायको के ।
४३. सव्रत='ग'—सत्व्रत ।
४५. उप—सद्रस='ग' उपमाना इनके सद्रस ।
४६ अरि पत्नी —'क' न्यु सपत्नी ।

सम कछु घटि उपनाइका, जैसें कठिका नारि।
लघुता जुत घटि अनुनाइका, जनतियादि अनुहारि ॥४७॥

पीठ मर्द मंत्री सहस, चेट निपुन मधि सेव।
गुन प्रवीन बिट हास रस, रसिक बिदूपक भेव ॥४८॥

कवित्त

स्वकीया के त्रयोदस भेद सब जानों ऐसैं,
मध्या प्रौढ़ा धीरादिक भेदनि सों ठानिये।
पुनि जेष्टादि जोरैं द्वादस ए मुग्धा एक,
परकीया दुविधि सामान्या एक मानिये।
शोडस ए आठ गुनैं एक सौ अठाईस ऊ,
उत्तमादि कीनै तीन अस्सी चार जानिये।
सूरति सुकवि दिव्या-दिव्य भेद कीने ऐसैं,
ग्यारह सै बावन यों नाइका बखानिये ॥४९॥

द्वादश आभरण

दोहा

सीस भाल श्रुति नासिका, ग्रीवा उर कटि बाहु।
मूल पानि अंगुल चरन, भूषन रचि अवगाहु ॥५०॥

षोडश शृंगार

मंजन माँग कच बिंदु कजल, तिल मुख रद अँगराग।
सुरभि चित्रपट अल सुमन, महँदी जावक लाग ॥५१॥

भावानुसार नायका भेद

समय देसवय भावते, बहुत त्रियनि के भेद।
कवि कोविद बल बुद्धितें, समझि लेत बिनु खेद ॥५२॥

---

४७ जनतियादि=जनति आदि।
४९ गुनैं—'क' जोरे।

दोहा

मध्या प्रौढा आठ करि, धीरादिक जेष्टादि ।
मुग्ध चारि दस परकिया,गनिक सु त्रैंसठि आदि ।।५३।।

द्वादस त्रय सौं जोरि पुनि, उत्तमादि सुविचार ।
दिव्यादिव्य किये सु षट, सहस आठ सौ चारि ।।५४।।

चारि गर्विता देस विधि, जोरि जाति सों नाम ।
चारि लाख पैंतिस सहस, चारि सौ छप्पन वाम ।।५५।।

अनुसयना मुदितादि के, देस काल बहु भाव ।
कियै होति है नाइका, कोटिनि विधि कविराव ।।५६।।

दंपति के रस भोग कौ, वरनत सुरत सुजान ।
सुरत अंत जो वरनिये, सो सुरतांत बखान ।।५७।।

धाय सदन सखि जनिय घर, सूने ग्रह वन ओर ।
न्यौते मिस उत्सवनि में, प्रथम मिलन ए ठोर ।।५८।।

नाइनि मालिनि वढइनी, जनी परोसिनि वाल ।
धाइ नटी संन्यासनी, दूती सव सव काल ।।५९।।

रस पारैं निज ओर तें, मन की उक्ति उपाइ ।
कही कहै संदेस कछु, उत्तमादि सखि गाइ ।।६०।।

सखी करम सिक्षा विनय मान मोचिवो जानि ।
उपालंभ झुकिवो रमन, रुचिं सिंगार वखानि ।।६१।।

मंद हास नैननि हंसै, कल धुनि सो कल हास ।
अति तै अति परिजन हँसे, सो परहास प्रकास ।।६२।।

जिहि जिहिं जैसा लच्छननि, कनिये जहाँ कवित्त ।
सो रस वरनन वूझिये, वुध जन अपने चित्त ।।६३।।

---

५५. वाम—'क' दाम ।

चौदह ए सब कवित्त हैं, चौदह रतन प्रमान।
यातै नाम सु ग्रंथ कौ, यह रसरत्न सुजान ।।६४।।

बसु रस मुनि विधु (१७६८) संवतहि,
माधव रवि दिन पाइ।
रच्यौ ग्रंथ 'सूरति' सु यह, लहि श्रीकृष्ण सहाइ ।।६५।।

इति रसरत्न

टीका-सम्बन्धी दोहे

अति दुरंत भव निधि सुरति, रहै संत पद पाइ ।
सुख अनंत सहजैं रहै, जौ भगवत सहाइ ।।१।।

पोथी यह रस-रतन की, चौंदह कवित प्रसिद्ध ।
जिहि विधि इह टीका भई, सुनिये सो वुद्धि वृद्ध ।।२।।

नगर मेडता मध्य है, अति सुसील गुग्यान ।
नाम सु जिहि सुलतानमल, जिनकै गुनि सनमान ।।३।।

तिनकी रुचि कैं कारनैं, 'सूरति' सुकवि वनाइ ।
सुगम ग्रथ ऐसौ कियौ, सव पै समुझ्यौ जाइ ।।४।।

कह्यी नाइका तीन सै, साठि सु केसवदास ।
ग्यारहसै वावन इहाँ, ग्रंथ माँहि परकास ।।५।।

पै वह रसिकप्रिया विपैं, कह्यौ वचन सुविवेक ।
देस काल वय भावतें, केसव जानि अनेक ।।६।।

उहि वचसौ ह्याँ नाइका, वरनी वहुत विचारि ।
चारि लाख पैंतिस सहस, छप्पन जुत सत चारि ।।७।।

कवित्त

कोठारी रन धीर मेडता नगर
भये, वहुरि टीला जी लायक ।
भये जैतसी नाम लालचन्द सव सुखदायक ।
पुनि फतैचन्द तिन के भये,
पुनि सुजानमल जगत जस ।
सुलतानमल तिनकै भये,
जिनके गुन चरचा सरस ।।८।।

---

८. 'ग' मे यह छद इस प्रकार है—
कोठारी रनधीर मेडता नगर भयेवर ।
अति प्रसिद्धि जिहि नाम भये भीवोजी तिहि घर ।
कल्लाजी पुनि भये, वहुरि टीलाजी लायक ।
भये जैतसी नाम लालचद सव सुखदायक ।।

दोहा

तिन के हित टीका कियौ, सुनहु सकल कविराइ।
ओसवाल परसिद्ध जग, रिषभ गोत्र सुखदाइ ॥६॥
संवत सत अष्टादसै, सावन छटि भृगुवार।
टीका हित सुलतानमल, रच्यौ अमल सुखसार ॥१०॥
रस पोथी को सुख जितो, हिय को चाह सुजान।
तौ टीका पढ़ियौ भलौ, नीको ह्वै है ग्यान ॥११॥

कवि–परिचय

नगर इटाए में प्रसिध, गली छपैटी एक।
कान्यकुबिज पंडित गुनी, तामैं रहत अनेक ॥१॥
ज्ञाता शास्त्र पुरान के, मिश्र वेदमणि नाम।
तहाँ बसत विद्यावती, जिनकी सीला वाम ॥२॥
उननै जाए सिंहमणि, बसे आगरे जाइ।
गोकुल-सौ गोकुलपुरा, रहे तहाँ सुख पाइ ॥३॥
जगदम्बा नै सुरति पै, कीन्हीं कृपा अपार।
नर-तनु दीन्हों करन कौ, पूरव पाप उधार ॥४॥
सत्रह सै इकतिस बरस, सुखद फाल्गुन मास।
सुकल पच्छ सातै भयौ, घर में अति उल्लास ॥५॥
बड़े भयैं विद्या पढी, कवि कोविद के साथ।
साधु-संत सिच्छा दई, 'सूरति' भये सनाथ ॥६॥
जगत जनम सुभ करन कौ, कीन्हौ प्रभु गुन-गान,
कृष्ण-राधिका के चरित, रचे हृदय धरि ध्यान ॥७॥
ईस भजन सिंगार अरु, कवित-रीति कौ ज्ञान।
'सूरति' मन संतोष प्रति, मिलौ महा-सम्मान ॥८॥

इति श्री सूरति मिश्र विरचितं रसरत्न टीका सम्पूर्णम्। श्री श्री श्री श्री

'क' प्रति की पुष्पिका—

इति श्री सूरति कवि विरचिते रसरत्न टीका सम्पूर्णम्। लिखि है पठनार्थं महाराजा कुमार श्री जवानसिंहजी चिरंजीव रहज्यो। लिखितं ज्योतसी दयारामेण श्रीरस्तु। सम्वत १८७८ फागुन वद ८ गुरुवासरे। श्री। श्री। श्री। श्री।

श्री । लिखतं इन्द्रमणिना स्वीय पठनार्थम् । शुभमस्तु । श्री श्री श्री श्री श्री ।

'ख' प्रति की पुष्पिका इस प्रकार है—

इति श्री सूरति कवि विरच्चिते रसरत्न टीका सम्पूर्ण । संवत् १९२७ मार्गसिर विद ७ भोमे लिखितं ब्राह्मस दसोरा कोटेश्वर उदयपुर मध्ये । श्री ।

काव्य-सिद्धान्त

काव्य-सिद्धान्त

मंगलाचरण

दोहा

श्री बृन्दावन-मधि लसैं, नित वय नवल किसोर।
गौर-स्याम अभिराम तन, दंपति सम्पति मोर ॥१॥

कवि-वर्णन

कवि ताही कूँ कहत हैं, समझै कविता-अंग।
व्रज-सविता-गुन जौ कहै, तौ छविता प्रति अंग ॥२॥

काव्य-लक्षण

बरनन मन-रंजन जहाँ, रीति अलौकिक होइ।
निपुन कर्म कवि को जु तिहि, काव्य कहत सब कोइ ॥३॥

काव्य-कारण

कारण देव प्रसाद जहँ, सक्ति कहत सब कोइ।
वितपति अरु अभ्यास त्रय, विना काव्य नहि होय ॥४॥

जैसे बीज रु मृत्तिका, नीर मिलै सब आनि।
तबहीं तरु प्रगटै सु त्यौं, कविता इनतैं जानि ॥५॥

---

१. मोर=मेरी।
२. कूँ=को। कहै 'ख'
४. वितपति='क' [illegible] व्युत्पत्ति, अवितपति='क' में अव्युत्पत्ति। जल [illegible] प्रति मे जन्न चिनन तैं, 'ख' प्रति में जल वनन तैं।
५. इनतैं='ख'

प्रश्न

बीजादिक अग्र विन न तरु, काव्य अवितपति माहिं ।

उत्तर

ज्यों अंकुर जल विन न त्यौं, तरुता कविता नाहिं ।।६।।

काव्य-प्रयोजन

मोद उपावै चित्त कूँ, करै असुभ कौ नासु ।
कीरति धन अरु इष्ट फल, कहै प्रयोजन तासु ।।७।।

काव्य का रूप

शब्द अर्थ निरदोष जहँ, गुन भूपन जुत जानि ।
काव्य सुवृत रचना सरस, अलंकार मय मानि ।।८।।

शब्द-निरूपण

शब्द त्रविधि वाचक प्रथम, अरु लाच्छनिक सु जानि ।
विजक तहँ वाचिक त्रविधि, रूढ जोग कहिं मानि ।।६।।

तीजै तिन मिश्रित कहैं, जैसे भू यह रूढ़ ।
जोगक विध-सुत आदि लख, पंकज मिश्रित गूढ़ ।।१०।।

वाच्यार्थ

अर्थ जु वाचिक शब्द कौ, वाच्य कहत है ताहि ।
कढ़ै जु अभिधा व्रत्त करि, आदि सँकेत जु आहि ।।११।।

ग्रंथान्तर

जात क्रिया गुन द्रव्य मय, शब्द-प्रवृत्ति निहारि ।
यह रति तरु मोहै सुरग, दारुयितो पटु चारु ।।१२।।

---

६. विनन = 'ग'—विनत ।

८ जुत=युत, युक्त ।

६. विजक=व्यजका जोगकहँ=यौगिक को ।

१०. तिन = 'क'—तन ।

११. कढै=निकले । इस छंद के वाद 'ग' में गद्य–टीका है । आगे हर छद के वाद टीका दी गई है ।

१२. दारु इतौ='क' 'दारुयितो' । इस छंद के पश्चात् गद्य टीका है ।

लक्षणा विधि

शब्द लागि निकसै जहाँ, वृत्त लक्षणा होय

शब्द लाछनिक सो, जहाँ, बृत्ति लक्षना होइ।
ताकरि अरथ कढ़ै जुतिहि, लक्ष्य कहत सब कोइ ॥१३॥

मुख्य अर्थ को बाध अरु, अरथैं देइ लखाय।
ताहि लक्षना कहत है, सकल सु कवि कविराय ॥१४॥

लक्षणा के भेद

तहाँ लक्षणा दुबिध है, इक निरूढ़ यह नाम।
दुतिय प्रयोजनबति कहै, ग्रथनि मति-गुन-धाम ॥१५॥

वह निरूढ़ लच्छना जहाँ, शब्द असभव रूढ।
नारगी गाड़ी चतुर, कूरह कहै अगूढ़ ॥१६॥

प्रयोजनवति जु भाँति षट सुद्धा गौनी होय।
सुद्धा चारि प्रकार तहँ, गौनी द्वै विधि जोय ॥१७॥

शुद्धा-भेद

उपादान लच्छना अवर, लच्छन लच्छना जान।
सारोपा इक है बहुरि, साधिवसाना मान ॥१८॥

उपादान लक्षणा

निज अरथहि थापन जहाँ, तजन परारथ मान।
खड्ग चलै ज्यों समर मे, उपादान सो जान ॥१९॥

द्वितीय लक्षणलक्षणा

औरहि थापन निज तजन, लच्छनलछना जान।
ज्यौ गगा मे घोष तहँ, तीर अरथ पहचान ॥२०॥

---

१४. देइ—'क' मे देह।

१५ दुबिध=दो प्रकार की।

१६ गाडी=वाहन, स्थिर। नारगी=एक फल, जो रँगी न हो, रग-हीन।

२० जहँ='ख'—है।

सारोपा और साध्यवसाना

जहाँ काहु सम्बन्ध सों, कहैं दुहूँ इक आनि ।
वृष्टि अन्न ही है सु लखि, अन्न महीजे जानि ।।२१।।

साध्यवसाना

कुकभा छंद

ज्यो कारन कारिज संवव, वृष्टि अन्न यह जानौ ।
कहूँ होत तादर्थ भाव तें, जाचक वस्त्र वखानौ ।।२२।।

कहुँ अवयव सवन्धु सुगज पट, स्वामि भाव नृप दासै ।
विदमान जौ सव्द सु लोपै, तऊ अर्थ वह भासै ।।२३।।

गौणी भेद

दोहा

गुण उपमान लीज्ये कहैं, दोऊ के इक नाम ।
कमल नयन पट मद्धि सौ, विधु प्रकास अभिराम ।।२४।।

व्यजक शव्द

विजक सव्द वही जहां, व्रित्त विजना होइ ।
ता करि अर्थ कढ़ै जुतिहि विग्य कहत सव कोइ ।।२५।।

जहँ पद के सम्बन्ध तें, भास अनेकन अर्थ ।
चतुरन कौं सो विजना, तिहि धुनि कावि समर्थ ।।२६।।

उत्तम विग प्रधान तहँ, गौन सु मद्धिम जान ।
रहित विंग तहँ अधम कह, कावि त्रविध गत मान ।।२७।।

---

२४. ज्यो—'ख' जो । अरत्थ—'क' अरथ ।
२६. कावि—काव्य ।
२७. कावि=काव्य

व्यंग-प्रधान उत्तम काव्य

जौ सुगंधि प्रिय तौउ किन, लीजै अलि नँद-नंद ।
आजु तरुनि के बाग में, तजत कमल मकरंद ।।२८।।

वस्तु-अलंकृति रसनि में, बिग तीनि थल होय ।
तहाँ पद्मिनी आँसु द्रिग, उद्दीपन क्रम जोय ।।२९।।

गौणी व्यंग्य मध्यम काव्य

स्तुति मिस निंदा जानहू, कहत जु अहित प्रसंग ।
धनि धनि सखि मोहित भई, नख रद छत जुत अंग ।।३०।।

अधम काव्य

पद्धरि

अधम काव्य है रहित बिग ।
जिहि अंग संग दुति ढंग रंग ।।३१।।

अर्थ-भेद

दोहा

वाचि लच्छि अरु बिंग ये, तीन भाँति के अर्थ ।
कहे सु औरै विध सुनौ, ग्रन्थांतर न समर्थ ।।३२।।

तातपर्य इक अर्थ है, चौथौ ग्रन्थन माहि ।
रितवर नत ज्यों बृखन के, नृतत पंखि सरसाहि ।।३३।।

ग्रन्थान्तर

स्वतैं संभबी अरथ इक, अपतैं संभव होय ।
कवि प्रोड़ौकित सिद्ध इक, कवि ऋत उक्तज कोय ।।३४।।

कुकभा छन्द

कबि कल्पित व ऋत प्रौढ़ो कित, सिद्ध तीसरै जानौ ।
अन्य काव्य में अरथ अन्य, ऋत कढै अधिक रस मानौ ।।३५।।

---

२८. अलि=सखी, भ्रमर । तरुनि=वृक्षों, तरुणी ।
३०. यह छद अलकारमाला में भी है ।

उदाहरण

दोहा

चली चाँदनी में तरुनि, मिली जोति मैं जोति ।
इती बीच की जोन्ह कछु, ओपी सी दुति होति ।।३५।।

दोष-वर्णन

छप्पय

तजहु अविधि असलील, जुगुपसा, व्रीड अमंगल्न ।
श्रुतिकटु, दुःसधान, हीन-रस ग्राम नहिन भल ।
पंग मृतक संदिग्ध, क्लिप्ट पुनरुक्ति निरर्थक ।
अधिक न्यून क्रम-हीन, विरथ जति-भग, अनर्थक ।
अप्रयोक्त विरोधी देस पथ, समय लोक आगम वरन ।
तजि शब्द चिन्ह अरु दोस जे, सबै कान्ति सोभा हरन ।।३७।।

अश्लील-लक्षण

ग्लानि लाज आवत कहत, असुभ होय असलील ।
पाद लिंग वा मनुज के, हते भाग वढ सील ।।३८।।

श्रुतिकटु-दुःसंधान-हीन-रस-लक्षण

श्रुति कटु करन सुहाय नहि, अनुकूलै प्रतिकूल ।
दुसंधान सो हीन रस, जात रहै रस मूल ।।३९।।

उदाहरण

चलौ नहीं किह हेत मन तऊ न बोलि गँवार ।
तजि ऐसे वचनहि तजत, तजै न तो पर भार ।।४०।।

ग्राम-पंग-दोष-लक्षण

ग्राम शव्द ग्रामीन ज्यो, लखि तिय सुन्दर गाल ।
छंद-भंग सो पग यह, भरतार सेवत वाल ।।४१।।

---

३७. अनर्थक='क'—आमर्थक ।
३८ वड='क'—वभ्र ।
३९ करन=कर्ण, कान ।

मृतक-संदिग्ध-लक्षण

अरथ हीन सो मृतक वह, दील बील धल धाल।
सो संदिग्ध औरहि अरथ, चलै निहारै बाल ।।४२।।

क्लिष्ट-पुनरुक्ति-दोष-लक्षण

क्लिष्ट अर्थ सो क्लिष्ट विध, नाम अर्थ सुत देह।
सो पुनरुक्ति द्वै वा अरथ, चलि तिय पिय गृह गेह ।।४३।।

निरर्थक-दोष-लक्षण

चरनन के पूरन अरथ, बरन जहाँ निरधार।
सु निरर्थक पिय देखिये, वह आई अबलार ।।४४।।

अधिक-दोष-लक्षण

विनुहि प्रयोजन पन जहाँ, पद सो अधिक निहार।
तुव मुख चंद सरोज अलि, आवत यह निरधार ।।४५।।

न्यून-दोष-लक्षण

जहँ चहियत कछु पद प्रगट, न्यून दोस तिह नाम।
तुहू देखि सखि नीच वभु, दहत तियहिं बिन काम ।।४६।।

क्रम-हीन व्यर्थ-यति-भंग-लक्षण

सोरठा

क्रम न गनै क्रम हीन, बिरथ सु पूरब परि अमल।
जति भंग अरु मै लीन, और चरन के वरन जहँ ।।४७।।

उदाहरण

कहा वस्तु सुरमुनि उरग, देह बताय सु ओक।
जानत है हम हू सुधरनी पताल दिव लोक ।।४८।।

---

४३. गेह = 'क' ग्रेह।

४७. इस छद की क्रमसंख्या ५७ है तथा आगे भी इसी क्रम का अनुसरण किया गया है।

असमर्थ-अप्रयुक्त-दोष

सु असमर्थ जहँ अर्थ बल, हनन कियो यह नाह।
अप्रयुक्त नहिं प्रयोग में, वाह अदेखै दाह ॥४९॥

विरोध-लक्षण

मरुत जलाशय वरनियै, चल चख चलदल तूल।
कंज निसापति वृत्र सचि, द्विज सेवक दुख मूल ॥५०॥

अनुसरण

श्वेत दीप गुन तात कौ, दंडन करि सिख देहु।
तिय हरषत बरसत जलद, तजि विरोध बुध गेहु ॥५१॥

अनुचितार्थ-लक्षण

विरस भोग में सोगपद, नीरस सब छल प्रीति।
प्रतिकूलाषिर रस विरुध, बरनन दुष्क्रम रीति ॥५२॥

उदाहरण

मिलि तिय सूतक न्हान पर, सठ कुलदा इह छद्म।
अति रति किय पति यहाँ लक्षण दै पद्म ॥५३॥

प्रश्न

कहौ हीन रस अरु विरस, नीरस में कह भेद ?

उत्तर

तहँ रस सत द्वै विरुद्ध रस, विनु रस लक्खन खेद ॥५४॥

विपरीत क्रम

कह्यो चहत विपरीत सो, होय विरुध क्रत गाय।
दीनो सुख चह दुख दियो ऐसो नृपति सुभाय ॥५५॥

दोष तीन थल होत है सब्द अरथ रस माहि।
समझि लीजिए बुद्धि वल, जहँ जैसो सर साहि ॥५६॥

---

५०. देश—विरोध, पथ-विरोध, लोक-विरोध, समय विरोध आदि 'विरोध' के भेद है।

५३ 'क' व 'ख' 'ग' मे यह छद अपूर्ण है। 'ग' मे इसकी छद सख्या ५० है।

उदाहरण

कटु करणानिक शब्द के, विरथ अरथ अरु जानि।
विरसा दिक रस दोष है, जानत कवि गुन-खानि ॥५७॥

अगनिग जो तिहि भेद कौ, कहत कवित मे आन।
षटषट आखट रूप गन, द्वै द्वै तहँ पहचान ॥५८॥

दोष-अंकुश

विरथ कथा अरु सूरति मधि, अरि अति गुन असलील।
ग्राम सुहासी श्लेष में, जो निरथक गुन शील ॥५९॥

गुण-वर्णन

(माधुर्य-गुण)

सो माधुर्य सिगार अरु, वरन मधुर सुख स्रोत।
कमल नयन के वयन सुनि, मयन अमन हिय होत ॥६०॥

(ओज-गुण)

औज रुद्र अरु वीर मे, ब्रत संजोगी वर्न।
देखि खगारिपु भग्ग गै, डगा सर्व सुख कर्न ॥६१॥

(प्रसाद-गुण)

आभासै सुनतहिं अरथ, सो प्रसाद गुन गाय।
रे मन जो चाहत भलौ, तौ हरि सों चित लाय ॥६२॥

नवरस-वर्णन

व्रत विचार कहै सुनौ, छंद-सार लखि मित्त।
नव रस कछु सछैपतै, कहत सुनहु दै चित्त ॥६३॥

नव रस आदि सिगार रस, हास्य करुन रुद वीर।
भय विभत्स अद्‌भुत वरनि, सांत परम गुन धीर ॥६४॥

---

५८. आन=अन्य। आखर=अक्षर।

६४. यह दोहा 'रसरत्न' मे क्रम-सख्या २ पर है रस='रसरत्न' में 'पुनि'।

रस-देवता का नाम

कृष्न देव सिगार के, स्याम रंग उद्योत।
प्रथम देव सित हास्य रस, यम करुना लु कपोत ॥६५॥

रुद्र अरुन तहँ रुद्र सुत, इन्द्र वीर विध चारु।
दया दान अरु धर्म रिन, हेम वरन निरधारु ॥६६॥

अस्त भयानक काल सुर, वीभछ नील वखान।
महा काल सुर अद्भुत सु, पीत मदन सुर जान ॥६७॥

सांत सम त्थाई सु जिहिं, चन्द्र वरन हरि देव।
ऐसे 'सुरति' सुकवि कछु, कहे रसन के भेव ॥६८॥

रस-लक्षरण

जहँ पोपै थाईन कौ, मिलि विभाव अनुभाव।
विभिचारी तहँ रस प्रगट, आनँद कथा प्रभाव ॥६९॥

भगवत वरन सरूप रस, आनँदमय इमि जानि।
तातै करुनादिकनहू मद्धि हौत सुभ खानि ॥७०॥

थाई नव रस रति प्रथम, हाँसी सोकरु क्रोध।
उत्साहरु भय ग्लानि कहूँ, विसमय सम करि सोध ॥७१॥

आदि अ त ठहराव जो, रस कै थाई भाव।
आलवन उद्दीपनौ, मै विधि कहत विभाव ॥७२॥

आलम्वन अवलंवई जिन जिन कौ रस आय।
जिनतै दीपति ह्वै वढै, ते उद्दीप गनाय ॥७३॥

अन्तर थाई भाव जिह, वोधक है अनुभाव।
विभिचारी रस सचरै, निरवेदादिक नाँव ॥७४॥

---

७२. इस छद के प्रथम दो चरण और 'रसरत्न' के छद सख्या २९ के प्रथम दो चरण समान है।

७५. यह छद रसरत्न मे सख्या २८ पर है। सव रस अरु='रसरत्न' मे "रति पति रस"।

विभावादि वर्णन

(रसरतनै कवित)

मन को विकार भाव, बोधक सो अनुभाव
हेतुरस है विभाव, द्वै विधि सो गहिये।

आलबन जिन्है अवलबै सब रस अरु
दीपत करै जो सोई उद्दीपन कहिए ॥

स्तभन स्वेद सुरभंग, कपन विवर्ण अश्रु
रौमच प्रलय बिधि सात्विक सो लहिये ॥

रति, हाँसी, सोक, क्रोध, उछाहरु भय निन्दा,
विस्मै समताई भाव नीकै जानि रहियै ॥७५॥

विभिचारि भाव वर्णन

(कवित्त)

निर्वेद, ग्लानि, सका, गरब, अमर्ष, चिता,
मो, दीनता, असूया, इसमृति, सु जानियै ॥

मद श्रम, उनमाद, आलस, हरष, व्रीड़ा,
जड़ता, अवेग, ध्रति, मति, भय, मानियै ।

आकृति-गुपति, चपलता औ अपसमार
उत्कंठा निद्रा औ सुपन बोध ठानियै ।

उग्रता विषाद व्याधि वितरक मृत्यु जुत
ऐई सब विभिचारी भाव कै बखानियै ॥७६॥

दोहा

कहु थाई विभिचारिता, ज्योंह सरस सिंगार
रस वीरह उच्छाह अरु, विसमै बहु रसुढार ॥७७॥

---

७६ यह छद 'रसरत्न' मे सख्या ३० पर है।

शृंगार रस-लक्षण

सूरति संतत जह रहै, रति कौ पूरन अंग।
ताहि कहत सिंगार रस, केवल मदन प्रसंग ।।७८।।

सो सिंगार रस भाँति द्वै कहे सजोग-वियोग
अँतरँग बहुरँग होत जहँ प्रछन प्रकास प्रयोग ।।७९।।

तीय अरु नायक परसपर, आलवन रस आहि।
राग रूप राकेस रुद, थल उदीप इत्यादि ।।८०।।

लोचन मुख अंगन अतनु, ये अनुभाव विचारि।
व्रीडा हरस सजोग विय, श्रम संकादि सचारि ।।८१।।

शृंगार रस का उदाहरण

पथिक निहारि पय पाली रूप वारे दृग,
उरध कै वार पान करै लखै वन कौ।

विरल सुधार करि अँगुरिन चारि पल
गति हनवार भावै अँतरन छिन कौ ।।

त्योही वह नारि प्रीति रीति हिय धारि छाँड़ै
तनु तनु धार देखौ प्रेम दहुवन कौ ।।

'सूरति' विचारि मन कीन्हों निरधार यह
रसहै सिगार औ सिगार बरनन कौ ।।८२।।

आलवन इहँ तिय पथिक परस पर
उद्दीपन अँगुरी विरल तनु धार है।

बदन पै प्रीति झलकति सोइ अनुभाव
स्वेद कपनाई तेई श्वातक विचार है।

७८. जहँ रहै='रसरत्न' मे 'रहत है'। यह छंद रसरत्न मे संख्या ३ पर है।

८२. कीन्हो='क' मे कीधौ।

संका उतकंठा व्रीढ़ा धृति औ हरष आदि,
जानि विभिचारी होत जात सु अपार है ।

ऐसो सब मिलि रति थाई संग सोहै तातैं
पूरन सिंगार जामैं सब सुख सार है ॥८३॥

दोहा

अरु सिंगार रस अंगजै, हाव भाव रस भेद
सबै कहे रस रत्न में समझहु तहँ हरखेद ॥८४॥

हास्य रस-वर्णन

हास्य विदूषक अंग तजु, आलंबन उद्दीप
दृग सँकोच अनुभाव अरु नीद सँचार समीप ॥८५॥

उदाहरण

जल थल भ्रम पट उचकरत रहे सबै मुसकाय ।
जानि फटक थल जल परत, हँसे सबै नृपराय ॥८६॥

हास्य-भेद

इसमित, मुसकन, मृदु हँसन, विहँसन धुनि कछु होय ।
दृग चल बहु धुनि उपहँसन, दृग जल सद अप सोय ॥०७॥

करताली सद जल बहत, भेद न जन अति जान ।
उत्तम मद्धिम अधम कै, द्वै-द्वै हास बखान ॥८८॥

करुण रस

इष्ट नास तहँ करुन रस, है अनिष्ट जिह दाय ।
आस नास मधु करन तौ, विप्रलम्भ रति थाय ॥८९॥

जौलों रति वानी नहीं, तौलौ करुन ससोक ।
रति की वानी भयै सु पुनि विप्रलम्भ रति ओक ॥९०॥

करन अलंबन इष्ट गत, उद्दीपन है कृत्त ।
रुदितादिक अनुभाव हैं, मोह सँचारी चित्त ॥९१॥

उदाहरण

कौन सिखै है नृपन कौं तुम विन मति अवदात ।
सकल शास्त्र विद्यानि की, वात जात मद्रुतात ॥९३॥

चहुँर ओर लखि द्रोपदी, टेरी है जदुराज ।
रिपु समाज पट साज की, लाज राखिये आज ॥९०॥

रौद्र

आलवन मधि रुद्र अरि, चित्त उदीपन धारि ।
भ्रूभगह अनुभाव है, उग्रतादि सचारि ॥९८॥

उदाहरण

अरुन कहा यह पन करत, अरुनि पछत रिपु मार ।
अरुन करी धरनी समर, अरि नर दल अपगार ॥९५॥

वीर रस

वीरालंब जु जीतवे, जीत चित्त उद्दीप ।
उदीप अनुभावै सुमत, धृत सँचार समीप ॥९६॥

उदाहरण

दीन हेत धन देत व्रत, लेत चढत रनखेत ।
मुद समेत कपकेत हम, निरख्यो तेज निकेत ॥९७॥

भयानक रस

भय आलंबन हेत भय, क्रून उद्दीपन धारि ।
अनुभावै सुर-भग अरु, मुरछादिक सँचार ॥९८॥

उदाहरण

वैठो हो निज भवन मे, मित्रन रमनि समेत ।
सेत वँध्यो यह सुनत ही, भयो रावन्ह स्वेत ॥९९॥

---

९५. अरु='क' मे 'अरि' । अपकार—'क' मे अपगार ।
९९. मित्रन=मत्रियो ।

वीभत्स रस

आलंबन वीभत्य मे विगघ उदीप कमादि ।
ठीवनादि अनुभाव है, सँचारी मोहादि ॥१००॥

उदाहरण

खेचत हो शृगार जहँ, असत माँस अरु मेद ।
देखि समर थल धरम सुत, कीनौ चित्त अति खेद ॥१०१॥

अद्भुत रस

चित्त अलंबन अलौकिकै, वस्तु दीप गुन धार ।
हग विकास अनुभाव बहु, वितरकादि संचारि ॥१०२॥

उदाहरण

श्री वृन्दावन में रच्यौ, अद्भुत चरित रसाल ।
कोटि तियन सँग कर गहै, नरतन मदन गुपाल ॥१०३॥

शान्त रस भेद

हरि ही हित यह सांति रस, और जगत के जान ।
याही तैं कहुँ आठ रस, ग्रन्थन कहे वखान ॥१०४॥

पाँच भाँति के नवम रस, सांति प्रीति प्रेयान्न ।
वछ्ल मधुर रस जानिये, सुद्ध सांत मधि ग्यान्न ॥१०५॥

औ रस भक्ति-प्रधान है, सगुन रूप में गाय ।
थाई प्रीति सु सम लियै, प्रीति सांति मय पाय ॥१०६॥

सखा भाव रति थिर जहाँ, सु वह सांति प्रेयान ।
सो द्वै विधि यक दास मन, कहै सखा हर जान ॥१०७॥

अरिजनादि तौ एक सम, जानत जहँ ब्रज बाल ।
जहाँ पुत्र रति भाव थिर, वत्सलताहि रसाल ॥१०८॥

मधुरी रति थाई जहाँ, मधुरस व्रजतिय माँहि ।
सुद्ध सांति भगवान में, और ठौर ठौर कछु नाँहि ।।१०९।।

प्रीति सखी वत्सल जु ये, हरि ही में रस रूप ।
और ठौर है भाव जहँ सम थाई न अनूप ।।११०।।

मधुर जु रस हर ही विषै, और ठौर शृंगार ।
यहाँ न यह मनमत्थ कहूँ, करै अंग संचार ।।१११।।

जगत सु विपर्या नरन कौ, सदगति वरनी नाहि ।
व्रज–वालनि के गुन रटैं, तेऊ सदगति माँहि ।।१२।।

यातै यह रस और है, आपह मनमथ रूप ।
व्रज-लीला अद्‌भुत रची, मदन गुपाल अनूप ।।११३।।

शुद्ध शात रस का उदाहरण

सदा सुद्ध निर्रलिप्त तूँ, अज अविनासी आप ।
भ्रमतै यह जग रज्जु ज्यो, तोमैं पुन्न न पाप ।।११४।।

शात रस का उदाहरण

मोर-मुकट सिर पर धरैं, गर वनमाल रसाल ।
पीत वसन म्रदु हँसन सौ, वसो विहारी लाल ।।११५।।

प्रेम शास्त्र

दक्खिन दृग फुरकत भुज, होत सगुन अभिराम ।
मोहि आजु मिलि है तरुन, सखा सुदामा नाम ।।११६।।

दूती प्रेम

कहत सु वल श्रीकृष्ण सौं, चले कितै करि चाव ।
अपनौ दाव लयौ अवै, देहु हमारौ दाव ।।११७।।

---

११५ गर==गले मे । इस दोहे मे कृष्ण के लिए विहारीलाल शब्द का प्रयोग है, किन्तु कवि विहारीलाल के दोहे का भाव भी इसमे रूपान्तरित है ।

वत्सल शांत

लयो गोद में मोद सौ, सुत सुन्दर सुख कंद।
बाहर जात न दीठ डर, आँगन डोलत नंद ॥११८॥

मधुर शात

लखि सखि हरि की माधुरी, कहत न बनत अनूप।
कोटि कोटि मनमथन कौ, वारि डारिये रूप ॥११९॥

सब रस सामाजिक सुखद, नाटक हू सुखदाय।
रुद्र करुन वीभत्स मे, काव्य और नट भाय ॥१२०॥

अलंकार माला विषै, अलकार लखि लेहु।
यह विधि कविता रचहु तिय, कृष्ण गुणन चित देहु ॥१२१॥

रीति वर्णन

जहाँ धरत माधुर्य मे, विजक रचना लाय।
वैदरभी वह रीति अरु, उपनागरिका भाय ॥१२२॥

गौड़ी परषा ओज मे, विजक रचन सबाद।
पचाली अरु कोमला, विजक रचन प्रसाद ॥१२३॥

ग्रन्थान्तर

व्रतनुप्रास बरनन मधुर, ओज प्रसादज वर्न।
वैदर्भी सो आदि ये, रीति जान सुख कर्न ॥१२४॥

कहै कोमला वृत्ति ये, वृत्त मधुर गुन होय।
ग्रंथांतर के भेद ये, सबै जानिये सोय ॥१२५॥

त्रिविधि काव्य की रीति ये ग्रन्थनि कही बखानि।
वहु वरनन बरनन जहाँ। काव्य सुलच्छन जान ॥१२६॥

---

१२१. तिय=पति-पत्नि सम्वाद के कारण तिय का सम्बोधन है।
१२७. रसाभास के बाद शब्द छूटे हुए हैं। "तहँ आय" पाठ जोड़ा गया है।

अनुचित गति जेहँ रसनि की, रसाभास तहँ आय।
अब सुनिये शृंगार में, रसाभास जिहि भाय ॥१२७॥

एक ओर की प्रीत अरु, तिय अनेक नर प्रीति।
तरजिक रति को वरणिवो, अधम पुंज रति रीति ॥१२८॥

तिय अनेक नर प्रीति ज्यों, यह लक्खिन यह मांहि।
तौ परकिय दछ धृष्ट सठ, रसाभा ह्वै जाहि ॥१२९॥

उत्तर

परकीया सब पुरन रस, कुलटा यक आभास।
दक्खिन सुख सम प्रीति तौ रसाभास नहिं तास ॥१३०॥

जहाँ धृष्ट सठ निज तियनि, परकिय यक हित होय।
तहँ पूरन रस वहुत तौ, रसाभास तक जोय ॥१३१॥

बालापन तैं दृग बलै, इक ही सौ रस-रीति।
तिह सामान्या तरुन मे, नहि अभ्यास परतीति ॥१३२॥

उत्तम वृत अपहँसत अरु, उत्तम बुध उच्छाह।
चोर वधन में सोक इमि, रसाभास तकि नाह ॥१३३॥

अैसे नायक नायका, उनहू के अभ्यास।
जहँ इन की सी रीति रचि, ओरहु कहे प्रकास ॥१३४॥

यथा

सुमन स भूषन फल उरज, अति म्रदुतन हित केलि।
अँग अंगन तरु तरुन सै, छपटानी तिय बेलि ॥१३५॥

भाव ध्वनि-वर्णन

जहँ विभिचारी मुख्य अरु, देवतादि रति जान।
सुहै भाव सुत नेह तहँ, रसहू कहै बखान ॥१३६॥

व्यभिचारी मुख्य भाव

वैरु धरै आनँद न जहँ, कैसैं मिलिहै मीत ।
संका यहै प्रधान है, यातें भाव प्रतीत ।।१३७।।

भावाभास-वर्णन

विभिचारी आदिक जहाँ, अनुचित भावाभास ।
दीन भाव असमर्थ सौ, गनिका लाज प्रकास ।।१३८।।

भावोदय

कह्यौ भाव जो प्रथम सो, निरविकल्पादित आय ।
होय अचानक यह जहाँ भावोदय सु मनाय ।।१३९।।

भाव उदय बिनु लह हरष, पुनि विषाद लह चोर ।
भाव साति यह गति प्रगट, उदाहरन नहि थोर ।।१४०।।

भाव-संधि वर्णन

भाव विरोधी इक समै, भाव शुद्ध उर धारि ।
कैसैं यह देषति पियहि, हरष भीति जुत नारि ।।१४१।।

भावशबलता-वर्णन

अवरोधी यह भाव जहँ, भाव सबल गुन धाम ।
पिय आये बोली नही, कहा कियो यह काम ।।१४२।।

चिंता संका दीनता, उतकंठा निरवेद ।
समृति विषाद तै जानही, भावशबल कौ भेद ।।१४३।।

उदाहरण मतिवान कौ, फुरत लखिन नहि देख ।
समझहु काव्य सिधांत यह, करहु काव्य गुन लेख ।।१४४।।

शब्द अरथ तनु धातु मय, जीव सरस आनंद ।
अलंकार सो कंत है, अंग अंग प्रति छंद ।।१४५।।

गुन जो सुरता आदि गुन, रीति चलन सुन धीर।
दोप भंगु छंदादि बिनु, जानौ काव्य सरीर ।।१४६।।

जलत दीप परकास कौ, सुभ सुब्रह्म अवतार।
सत्रहसै अठ्ठानवैं, फागुन सुदि बुधवार ।।१४७।।

सुरति सुकवि सुनौ यहु फुरं जु कविता रीति।
तौ प्रभु गुन ही बरनियें, जौ हिय सब सुख प्रीति ।।१४८।।

(राजस्थान राज्य विद्या प्रतिष्ठान उदयपुर मे सुरक्षित प्रति की पुष्पिका—) "इति श्री सूरति मिश्र काव्य-सिद्धान्त सम्पूर्णम् ।।

श्रीरस्तु। पठनार्थं दघवाडिया कँवरजी श्री सावलदास जी। जुठियारा रामदानजो लालस री पुस्तक सूँ बाप जी श्री कनीराम जी लिखी तिण स्यातसुँ ये ग्रन्थ लिखा गया।"

'ख' प्रति की पुष्पिका. एती श्री काव्य सिद्धान्त ग्रन्थ कवि सूरति मिश्र कृत सम्पूर्ण। लीखणाथ पठणारथ राव जी श्री बखतार सीग जी कँवर मादोसीग जी लीखणार्थ चरजीव महतापसीग सलुमर नग्र मध्ये। १६३२ वसाख वुद ५ गुरे परत जोधपुर रा राव वागजी रो भतीजो जीवनराज जी री पृसत्तगसु।

'ग' की पुष्पिका—
इति श्री मूरति मिश्र कृत काव्य सिद्धान्त सम्पूर्ण। श्रीरस्तु। श्री ।। सवत् १९१३ रा कार्तिक कृष्ण त्रयोदश्यां रविवारे लिपीकृत। हरीराम व्यास जोधपुर मध्ये। श्रीशुभं भवतु ।।

कामधेनु कवित्त

कामधेनु कवित्त

दोहा

घन बपु तड़ि पट्ट दृग, सीस चंद्रिका मोर ।
लाल लाल बनमाल उर, जय जय नन्दकिसोर ।।१।।

अथ कामधेनुकवित्त कौ लच्छन—

दोहा

देत अनेक मनोरथनि, जैसैं सुरगौ एक ।
तैसैं एक कवित्त तैं, लहियैं छंद अनेक ।।२।।

यामे छंद अनंत है, सबहि कवित्त सुभाइ ।
तातैं सूरति कविन हित, कीयौ यहै उपाइ ।।३।।

कामधेनु पोथी रची, छंदनि काढि बनाइ ।
जासो भेद कवित्त कौ, सब पै समुझ्यो जाइ ।।४।।

कही जु पूरब कोविदनि, है याकी यह रीति ।
जहाँ तहाँ तैं बाँचियैं, छंद-काज धरि प्रीति ।।५।।

---

१. घन बपु=बादल के समान जिनका शरीर है । तडि पट्ट=बिजली जैसा पीला वस्त्र । लाल = लाल रंग, लाल=कृष्ण ।

२. सुरगौ=कामधेनु ।

३. कविन-हित=कवियों के लिए । इस छंद से स्पष्ट है कि 'कामधेनुकवित्त पुस्तक की रचना कवियो को शिक्षा देने के उद्देश्य से की गई है, मात्र चमत्कार के लिए नही ।

'सूरति' चित्रित छंद में, इतने दोष न मानि ।
जाति भंग पुनरुक्ति पुनि, बवजयरल इक वानि ॥६॥
दीरघ लघु कै बाँचियै यहै काव्य की रीति ।
कामधेनु के छद अब, कहौ सुनौ धरि प्रीति ॥७॥

अथ कामधेनु कवित्त कौ छंद स्वरूप लिख्यो है । कवित्त घनाच्छरी छद अच्छर ३१ मे सब भाँति के अनंत निकसत है याको स्वरूप लिख्यते ॥

कामधेनु के छंद लिख्यते

दोहा

स्याँम भजौ रागें तजौ, लहौ छद की रीति ।
'सूरति' सब सुख पाइहै, करि हरि पद सौ प्रीति ॥८॥

आदि अत लौ छाडि गहि, वरन एक के भेद ।
'सूरति' दियौ बताइ मग, लहौ छद नि खेद ॥९॥

कामधेनु-कवित्त

श्रीकृष्ण श्री धरापते अमर श्री बसीधरे राघवे सूरति लाइ ररौ मति धारिये ।
श्री गोविंद रमापते जदुपते स्यामा वरे वामने उरति गाइ पलौ मति टारियै ।
श्री वाराह रघूपते भवपते सीतापते यादवे जियहि आनि भलौ सुविचारियै ।
श्री गोपाल कृपालये ब्रजपते राधापते माधवे प्रभुहि मानि पलौ न विसारियै ॥

शार्दूल छंद

×

(आदि १९ अंत १२)

श्री कृष्ण श्री धरापते अमर श्री बंशीधरे राघवे ।
श्री गोविंद रमापते जदुपते स्यामा वरे वामने ।
श्री वाराह रघूपते भवपते सीतापते जादवे ।
श्री गोपाल कृपालये ब्रजपते राधापते माधवे ।१।

---

६. जाति=जति, यति ।
कामधेनु कवित्त—यही मूल कामधेनु छंद है, भिन्न-भिन्न क्रमो से लिए गए जिसके शब्दो से अनेक छद बन जाते है ।

१. मूल कामधेनु-कवित्त के आरम्भिक ११ अक्षर लेकर इस छद का उदाहरण बना है और उसी मे उसका लक्षण भी निहित है । अन्त के १२ अक्षरो का त्याग लक्षित है ।

द्रुतविलंबित छंद

×

(आदि १६ अंत १२)

सुरति लाइ ररौ मति धारियैं।
उरति गाइ पलौ मति टारियैं।
जियहि आनि भलौ सुविचारियैं।
प्रभुहि मानि पलौ न बिसारियैं।२।

त्रिभंगों छंद

× × ×
(आ १६। ३। २। १।४।५ अं)

श्रीकृष्ण श्रीधरापते अमर श्रीबंसीधर सुर लाइ ररौ।
श्री गोबिंद रमापते जदुपते स्यामा बर उर गाइ पलौ।
श्री वाराह रघूपते भवपते सीतापति जिय आनि भलौ।
श्री गोपाल कृपालए ब्रजपते राधापति प्रभु मानि पलौ।

गीतक छंद

× × ×
(आ १। ७।८। ३।२।१ ।६)

श्री अमर श्री बंसी धरे सुर लाइ ररौ मति धरियैं।
श्री जदुपते स्यामावरे उर गाइ पलौ मति टारियैं।
श्री भवपते षीतापते जिय आनि भलौ सुविचारियैं।
श्री ब्रजपते राधापते प्रभु मानि पलौ न बिसारियैं।४।

---

२. इस छंद के लिए अन्तिम १२ अक्षर लिए गये है।

छप्पय छन्द

× × ×

(आ १६ आ १६।२। १।८।१)

श्री कृष्ण श्री धरापते अमर श्री वंसीधर।
श्री गोविन्द रमापते जदुपते स्यामावर।
श्री वाराह रघूपते भवपते सीतापति।
श्री गोपाल कृपालये व्रजपते राधापति।

सुर लाइ ररौ मति धारि, उर गाइ पलौ मति टारि।
जिय आनि भलौ सुविचारि, प्रभु मानि पलौ न विसारि।५।

अडिल्ल छंद

× × ×

(आ १२।४।३ ।२।१ ।६)

वसीधर सुर लाइ ररौ मति धारियै।
स्यामावर उर गाइ पलौ मति टारियै।
सीतापति जिय आनि भलौ सुविचारियै।
राधापति प्रभु मानि पलौ न विसारियै।६।

मोदक छंद

+ × ×

(आ ४ ।४।१४।८।१)

धरापति लाइ ररौ मति धारि।
रमापति गाइ पलौ मति टारि।
रघूपपि आनि भलौ सुविचारि।
कृपालय मानि पलौ न विसारि।

---

५. इस छद मे प्रथम चार पक्तियों मे १६ वर्ण लिये गये हैं। अन्तिम दो पक्तियों के चार चरणो मे शेष क्रम अपनाया गया है।

पध्धड़ी छंद

× ×

(मा २।१३।१०।७)

श्री धरे राघवे सुरति लाइ।

श्री धरे वामने नति गाइ।

श्री पते जादवे जियहि भाति।

चौपाई छंद

× × ×

(मा ४।४।३।५।१५)

धरापते श्री बंसीधरे।

रमापते ते स्यामावरे।

रघूपते ते सीतापते।

कृपालये ते राधापते।९।

मालिनी छंद

× × ×

(४।३। १।११।११।१)

शरण अगर श्री बंसीधरे राघवे ये।

रघुप जलुपते स्यामावरे वामने ये।

रघुप जलुपते सीतापते जादवे ये।

कृपाल भुजपते रामापते माधवे ये।१०।

[illegible] छंद

× × ×

([illegible])

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

इन्द्रवज्रा छंद

× × ×
(१।३। ८।७।१।१।१)

कृष्ण श्रि वसीधर राघवे ये।
गौविन्द स्यामावर वामने ये।
बाराह सीतापति जादवे ये।
गोपाल राधापति माधवे ये।१२।

तोमर छंद

× × × ×
(८।४। ४।३। ३।२।७)

अमर श्री राघव लाइ।
जादुपते वामन गाइ।
भवपते जादव आनि।
बृजपते माधव मानि।१३।

दोधक छंद

× ×
(१६।३।३।६)

राघप लाइ ररौ मति धारिय।
बामन गाइ पलौ मति टारिय।
जादव आनि भली सुविचारिय।
माधव मानि पलौ न बिसारिय।१४।

उपेन्द्रवज्रा छंद

× × ×
(४।३। ५।७।१।१।१)

धराप बसीधर राघवे ये ।
रमाप स्यामावर बामने ये ।
रघूप सीतापति जादवे ये ।
कृपाल राधापति माधवे ये ।१५।

चंचरी छंद

× × × × ×
(१। ३।३।५ ।४।३ ।२।१ ।२। १।६)

श्रीधराप बंसीधरे सुप लाइ लौ मति धारियै ।
श्री रमाप स्यामावरे उर गाइ लो मति टारियै ।
श्री रघूप सीतापते जिय आनि लौ सुबिचारियै ।
श्री कृपाल राधापते प्रभु मानि लौं न विसारियै ।१६।

भुजंग प्रयात छंद

× ×
(४।८ ।७।१।१।१)

श्री कृष्ण श्री बसीधरे राघवे ये ।
श्री गोविद स्यामांबरे बामने ये ।
श्री बाराह सीतापते जादवे ये ।
श्री गोपाल राघापते माधवे ये ।१७।

मधुभार छंद

× × ×
(१।३।१८।२।७)

कृष्ण श्रि लाइ ।
गोबिन्द गाइ ।
बाराह आनि ।

सामानिका छ्द

× × ×
(१। ३।३। ६।३।१२)

श्री धराप राघवे।

श्री रमाप वामने।
श्री रघूप जादवे।
श्री कृपाल माधवे।१६।

तोटक छंद

× × × ×
(१। ३।४।८ ।३।३ ।४। ५)

श्री धरापति राघव लाइ ररौ।
श्री रनापति वामन गाइ परौ।
श्री रघूपति जादव आँनि भलौ।
श्री कृपालय माधव मानि पलौ।२०।

मरहट्टा छंद

× × ×
(७ ।१५। २।६। १)

ते अमर श्री बसीवरे राघवे सुरति ररौ मति धारि।
ते जदुपते स्यामावर वामने उरति पलौ मति टारि।
ते भवपति सीतापते जादवे जियहि भलौ सुविचारि।
ये बृजपति राधापते माधवे प्रभुहि पलौ न बिसारि।२१।

निसिपालिका छंद

× × × ×
(७।४। ५।३। २।३। २।८)

ते अमर राघवति लाइ मति धारियै ।
ते जदुपती वामनति गाइ मति टारियै ।
ते भवप जादवहि आनि सुबिचारियै ।
ये बृजप माधवहि मानि न बिसारियै ।२२।

तुरंगम छद

× × ×
(४।३। १।४।१८।१)

धरप अमर वे ये ।
रमप जदुपते ये ।
रघूप भवपते ये ।
कृपल बृजपते ये ।२३।

कमला छंद

× ×
(१६।३। ४।५)

सुरति मति धारियै ।
उरति मति टारियै ।
जियहि सुबिचारियै ।
प्रभुहि न बिसारियै ।२४।

पद्धड़िका छंद

× × ×

(७। ४। ५।८।७)

ते अमर राघवे सुरति लाइ।
ते जदुप वामने उरति गाइ।
ते भवप जादवे जियहि आनि।
ते वृजप माधवे प्रभुहि मांनि।२५।

कुंडलिया छंद

× × ×

(११।११।२।६।१)

श्री वसीधर राघवे सुरति ररौ मति धारि।
ते स्यामावर वामने उरति पलौ मति टारि॥

उरति पलौ मति टारियेति सीतापति जादव जियहि।
भलौ सुविचारियेत राधापति माधव जियहि॥
भलौ सुविचारि प्रभुहि मानि पलौ न विसर।
श्री कृष्ण श्री वरापते अमर श्री वंसीधर॥२६॥

भृग्वीनी छंद

(१।५।१।१।११।१२)

श्रीप अमर श्री वंसीधरे राघवे।
श्रीप जदुपते स्यामावरे वामने॥
श्रीप भवपते सीतापते जादवे।
श्रीप वृजपते राधापते माधवे॥२७॥

हरनी छंद

× × ×
(१।१३।५।३।४।५)

श्रीधर राघव लाइ ररौ ।
श्रीबर वामन गाइ परौ ।।
श्रीपति जादव आँनि भलौ ।
श्रीपति माधव माँनि पलौ ।।२८।।

बिलंता छंद

× × × ×
(८।४।२।५।३।२।६।१)

अमर श्रीधर राधव लाइयै ।
जदुपते बर वामन गाइयै ।।
भवपते पति जादव आँनियै ।
वृजपते पति माधव माँनियै ।।२९।।

संजुता छंद

× × ×
(१।१३।५।३।२।६।१)

श्रीधरे राघव लाइयै ।
श्रीबरे वामन गाइयै ।।
श्रीपते जादव आँनियै ।
श्रीपते माधव-माँनियै ।।३०।।

स्रृग्वी छंद

× × × ×
(१।५।१।५।७।३।२।६।१)

श्री बसीधरे राघवे लाइयै ।
श्रीप स्यामावरे वामनै गाइयै ।।
श्रीप सीतापते जादवे आनियै ।
श्रीज राधापते माधवे मांनियै ।।३१।।

प्रिया छंद

×
(२६।५)

मति वारियै । मति टारियै ।
सुविचारियै । न विसारियै ।।७५।।

मंथाना छंद

× × ×
(१२।४।६।२।७)

बशीधरे लाइ । स्यामावरे गाइ ।
सीतापते आनि । रावापते मानि ।।७६।।

विजोहा छंद

× × ×
(१।५।१।५।४।१५)

श्रीप वंसीधरे । श्रीप स्यामावरे ।
श्रीप सीताप्ते । श्रील रावापते ।।७७।।

किल्ली छंद

× ×
(२०।६।५)

रति लाइ ररौ । रति गाइ परौ ।
जिय आँनि भलौ । प्रभु मानि पलौ ।।७८।।

मालती छंद

× ×
(२४।६।१)

ररौ मति धारि । पलौ मति टारि ।
भलौ सुविचारि । पलौ न बिसारि ।।७६।।

कुमारलीला छंद

× × ×
(४।४।१६।२।४।१)

धरापति ररौ ये । रमापति पलौ यै ।
रघूपति भलौ ये । कृपालय पलौ यै ।।८०।।

नगर स्वरूपिणी छंद

× × ×
(४।४।२३+२७।४)

धरापते रमापते रघूपते कृपालयै ।
तिधारियै ति टारियै विचारियै विसारियै ।।८१।।

धरा छंद

√×√× × × ×
(१।१५।३।१२ + २१।३।१।१।५)

श्री राघवे । श्री वामने । श्री जादवे । श्री माधवे ।
ति लाइ लौ । ति गाइ लौ । हि आनि लौ । हि मानि लौ ।।८२।।

---

८१. प्रथम वंक्ति मे ४ । ४ । २३ और द्वितीय पक्ति मे २७ । ४ का क्रम है ।

तोमर छद

× × × ×

(१६।२।१।२।१।५।१)

मुर लाइ लौ मति धारि ।
उर गाइ लौ मति टारि ।
जिय आनि लौ सुविचारि ।
प्रभु मानि लौ न बिसारि ॥८३॥

द्रुमिला छंद

× × ×

(१।२।५।४।६।१।६)

श्रीय (श्री) धरापति वंसीवरे राघवे रति (सुर) लाइ ररी मति धारियैं ।
श्रीद रमापति स्यामावरे वामने उर गाइ पलौ मति टारियैं ।
श्रीह रघूपति सीतापते जादवे जिय आनि भलौ सुविचारियैं ।
श्रील कृपालय रावापते माधवे प्रभु मानि पलौ न बिसारियैं ॥८४॥

गंगोदक तथा खंजा छद

×

(१।३।२७)

श्री धरापते अमर श्री वंसीधरे राघवे मुरति लाइ ररी मति धारियैं ।
श्री रमापते जदुपते स्यामावरे वामने उरति गाइ पलौ मति टारियैं ।
श्री रघूपते भवपते सीतापते जादवे जियहि आनि भलौ सुविचारियैं ।
श्री कृपालये वृजपते राधापते माधवे प्रभुहि मानि पलौ न बिसारियैं ।८५।

---

८२ इस छद मे भी दो क्रम है ।

रोला छंद

× ×
(१२।१८।१)

बंसीधर राघवे सुरति लाइ ररौ मति धारि ।
स्यामावर बामने उरति गाइ पलौ मति टारि ।
सीतापति जादवे जियहि आँनि भलौ सुविचारि ।
राधापति माधवे प्रभुहि मानि पलौ न विसारियैं ।।८६।।

अनुष्टुप छंद

× × × × × ×
(१।३।१२।३।३।२।७।१।३।२२।५)

कृष्ण श्रि राघवे लाइ । बाराह सुविचारियैं ।
गोविंद बामने गाइ । गोपाल न विसारियैं ।।८७।।

सोरठा छंद

×
(७।२४)

श्री कृष्ण श्रि धराप श्री गोपाल कृपालये ।
श्री गोविंद रमाप श्री बाराह रघूपते ।।८८।।

वंसध्वनि छंद

× × × ×
(१।३।८।७।५।२।५)

कृष्ण श्रि वंशीधर राघवे ररौ ।
गोविंद स्यामावर बामने परौ ।
बाराह सीतापति जादवे भलौ ।
गोपाल राधापति माधवे पलौ ।।८९।।

ससिवदना छद

× × ×
(८।४।६।१।११।१)

अमर श्रि वे ये । जदुपति ने ये ।
भवपति वे ये । वृजपति वे ये ।।६०।।

प्रिया छंद

× ×
(१२।४।१५)

बसीधरे । स्यामावरे ।
सीतापते । राधापते ।।६१।।

चचला छद

× × × ×
(१।३।४।३।५।३।२।३।७)

श्री धरापते बसीधरे श्रि राघवे तिलाइ ।
श्री रलारते स्यामाब्ररेति वामने तिगाइ ।
श्री रघूपते सितापतेहि जादवे हिम्रान ।
श्री कृपालये राधापतेति माधवे हिमान ।।६२।।

तोटक छंद

× × × × ×
(६।२।४।४।३।२।१।४।५)

पति बसीधरे सुर लाइ ररौ ।
पति स्यामावरे उर गाइ परौ ।
पति सीतापते जिय आनि भलौ ।
लय राधापते प्रभु मानि पलौ ।।६३।।

---

१. इस छद मे वर्ण १३ से १६ तक के पश्चात् वर्ण १२ का क्रम है और उसके पश्चात् फिर १७ से १६ तक तीन वर्ण लिए गए है। इस प्रकार इस छद मे ग्रहण-त्याग के क्रम का अपवाद मिलता है।

सुषद छद

× × × × ×

(१।५।१।१।३।१।७।३।४।५)

श्रीप अमर बसीधर राघव लाइ रुरु ।
श्रीप जदुप स्यामावर बामन गाई परु ।
श्रीप भवप सीतापति जादव आनि भलु ।
श्रील वृजप राधापति माधव नानि पलु ।।९४।।

इत छंद सम्पूर्ण

अथ कामधेनु के विष्नुपद कथ्यते—

राग भैरव

× × × ×

(१।३।३।५।६।१।१।७।१)

श्री धराप बसीधर राघर सुर लाये ।
श्री रमाप बसीधर [स्यामाबर]उर गाये ।
श्री रघूप सीतापति जादव जिय आयैं ।
श्री कृपाल राधापति माधव प्रभु माये ।।९५।।

राग रामकली टेक

(११।५।३।२।१।२।७।४।१७।१।२।७)

श्री बसीधरे सुर तयइ

रमापते जदुपति स्यामावर वामने उर गाइ ।।१
रघूपते भवपति सीतापति जादवे जिय आंनि ।
कृपालये वृजयति राधापति माधवे प्रभु मानि ।।९६।।

---

९६. इस राग मे प्रथम पक्ति का प्रथम क्रम है तथा शेप पंक्तियों में द्वितीय